संन्यासिनी

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

राजा बहादुर श्री भगवती प्रसाद सिंह [चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इलाहाबाद] द्वारा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत
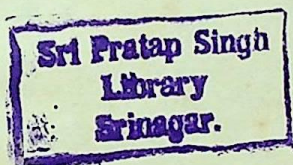
लेखक

विज्ञानरत्न, जगदेव सिंह 'देव'

प्रकाशक

आदर्श पुस्तक मन्दिर

चौक, इलाहाबाद।

प्रकाशक
पं० बनवारी तिवारी
प्रोप्राइटर—आदर्श पुस्तक मन्दिर
चौक, इलाहाबाद

दूसरा संस्करण
मूल्य २॥)

मुद्रक
विश्वप्रकाश
कला प्रेस, प्रयाग ।

प्रकाशक की ओर से

आज की परिस्थिति में एक नया प्रकाशन प्रस्तुत करना दुस्साहस समझा जा सकता है। पर हमें पुस्तक कुछ विशेष उपयोगी लगी और फिर इस पर जो सम्मतियाँ देश के सम्मानित विद्वानों और साहित्यिकों की ओर से आईं उनसे हमें ऐसा लगा कि जिन आदर्शों को साकार करने का प्रयास पुस्तककार ने किया है वे सार्थक सिद्ध होंगे। इसीलिए हमने निश्चय किया कि लेखक के संदेश हम अविलम्ब समाज तक पहुँचा दें और देखें उनकी सामाजिक उपयोगिता के बारे में हमारी आशाएँ कहाँ तक ठीक निकलती हैं।

'संन्यासिनी' पर देश के सम्मानित विद्वानों और साहित्यिकों की

सम्मतियाँ

श्री जगदेव सिंह का उपन्यास 'संन्यासिनी' जीवन की वास्तविकता की रोचक रूपरेखा है। 'संन्यासिनी' द्वारा दिये गये सशक्त संकेतों में समाज सुधार की भावना है। भाषा सरल और स्वाभाविक है। और मनोरंजन की धारा अविच्छिन्न है। आशा है लेखक की साहित्य-साधना की यह प्रथम आरती समाज का कल्याण करेगी।

डा० रामकुमार वर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

मैंने श्री जगदेव सिंह जी की
पुस्तक 'संन्यासिनी' देखी है।
यह बहुत शिक्षाप्रद है और
जगदेव सिंह जी ने इसे भली-भाँति लिखा है।
आशा है पाठकगण इसे बहुत पसन्द
करेंगे। यह स्त्री-शिक्षा के लिए भी
उपयोगी है। आशा है ऐसी पुस्तकें
घर-घर में पाई जावेंगी।

दिनेशसिंह
काला काँकर राज्य

'संन्यासिनी' सर्वोत्तम और अमर कीर्तियों का सामाजिक मौलिक शिक्षाप्रद उपन्यास है। पाठक इसे अवश्य पढ़ें। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

राजाबहादुर, डैयाराज्य

मैंने ठा० जगदेव सिंह रचित पुस्तक "संन्यासिनी" देखी। मुझे आशा है कि युवक युवतियों के लिये लाभदायक सिद्ध होगी। लेखक ने जो सामाजिक सुधार का ध्येय जनता के सम्मुख रक्खा है उसकी सिद्धि के लिये मेरी मङ्गलकामना है। पुस्तक भाव और भाषा दोनों ही के विचार से उत्तम है।

यह स्कूल की लायब्रेरियों के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

इतिहास विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय

डा० ईश्वरी प्रसाद
एम० ए०, डी०-लिट्

हिन्दी-साहित्य में उपन्यासों की कमी नहीं है। परन्तु उच्चकोटि के गंभीर विषयक उपन्यास केवल इने-गिने हैं। 'संन्यासिनी' इन्हीं सर्वोत्तम और अमर कीर्तियों का जीता-जागता उदाहरण है। इसकी लोकप्रियता और सरसता का मूल कारण इसकी धारा-प्रवाह भाषा, सजीव चित्रण तथा अद्भुत कथानक है। नारी-जीवन की विवशता-प्रेम तथा भारतीय समाज में उसका स्थान इन विषयों का मार्मिक विवेचन प्रस्तुत संन्यासिनी को छोड़ शायद ही किसी ग्रन्थ में उपलब्ध हो। यदि इस पुस्तक को गार्हस्थ्य जीवन का एक नवीन आविष्कार कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। ठा० जगदेव सिंह जी ने चरित्र-चित्रण की जो शैली इस उपन्यास के अन्दर उपस्थित की है वह सचमुच आकर्षक, रुचिकर और अनुकरणीय है। पितृभक्ति, पुत्र-प्रेम, गार्हस्थ जीवन की जटिलता को समझने के लिये पुस्तक अनिवार्य है।

भीमसिंह
मंडावा शेखावाटी
जयपुर (राजपूताना)

'संन्यासिनी' ठा० जगदेवसिंह द्वारा लिखित एक अति उपयोगी पुस्तक जंची। कथानक ग्राम्य-सुधार पर केन्द्रित है और इसका लक्ष्य सामाजिक उन्नति है। ठा० जगदेवसिंह की शैली चित्ताकर्षक है और पुस्तक पढ़ने योग्य है।

ऑनरेबुल पं० प्रकाशनारायण सप्रू
बार-एट-ला
मेम्बर कौंसिल आफ स्टेट

पहिला परिच्छेद

उमानाथ साधारण गृहस्थ थे। एक जोड़ी बैल, एक गाय, उसका बछड़ा मुन्नी, पाँच-छः बीघा खेत, एक छोटा-सा मकान और बाग—यही उनकी सम्पत्ति थी। गाँव-घर में इनकी ईमानदारी और सचाई प्रसिद्ध थी। जहाँ कहीं पद-पंचायत होती, ज़रूर बुलाये जाते और निपटारा भी ऐसा करते कि दूध का दूध और पानी का पानी। इनकी अप्रतिभ न्याय-शक्ति की सभी प्रशंसा करते। इस मामले में इनकी प्रसिद्धि देख कर सरकार की तरफ़ से कई बार 'असेसर' बनने के लिए कहा गया, मगर इन्होंने यह कह कर बराबर टाल दिया।कि "वह जगह बड़ों और जीहुजूरों के लिए है, हम गरीब आदमी अपने गरीबों की दुनिया में ही बड़े आनन्द से हैं।" ठकुर-सुहाती करना तो इन्हें ज़रा भी नहीं आता था। इनकी पत्नी सुखरानी अपने पति की इस नेकनामी से प्रसन्न तो अवश्य होती थी, लेकिन ऊपरी तौर पर इनके रोज के कारनामे देख कर बिगड़ा भी करती थी। यह अपने पड़ोसिनों और उमानाथ के मित्रों के सामने पतिदेव को ख़ूब आड़े हाथों लिया भी करती थी।

सुखरानी कहती—न जाने किस पूर्व-जन्म के पाप से इस घर में आई। जिस दिन डोले से उतरी, उसी दिन से तेली का बैल बन गई। नित्य-प्रति सवेरे चक्की चलाती हूँ, चौका-बरतन करके गोबर पाथती और कूड़ा-करकट घूरे पर फेंकती हूँ। तब तक अरुणिमा और अखिलेश के कलेवा करने का समय हो जाता है। उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करते-करते अखिलेश के पिता के खरमेटाव का वक्त हो जाता है। दाना और रस लेकर खेतों पर जाती हूँ, वहाँ से लौट कर कभी रूखी-सूखी रोटी, कभी बथुआ का साग, कभी आलू और मटर की घुँघनी तो कभी पनुआ रस पर ही दोपहरी कट जाती है। गन्ना पेरने वाले लोहे के कोल्हुओं के चल जाने से रस पीने का मजा ही जाता रहा। शाम को तरकारी रोटी और कभी दाल-चावल बना करता है। कड़ाही में तेल और घी तो किसी पर्व के दिन ही पड़ पाता है, सो भी घास का घी चल जाने से आसानी तो ज़रूर हो गई है; मगर पूरियों का स्वाद ही जाता रहा। जहाँ किसी ने डट कर खाया कि दवाई की आवश्यकता पड़ी। आज-कल ब्रह्म-भोजों में सब इससे, बड़े सस्ते में निबट जाया करते हैं। अखिलेश के पिता सिर्फ़ हलवाही तो करते हैं। जानवरों के लिए चारा काटना, पानी भरना, यहाँ तक कि चिलम भी भर कर मुझे ही देनी पड़ती है। लेकिन यह सब जो कुछ करती हूँ वह इन्हीं दोनों छोटी हथेलियों वाले सुकुमार बच्चों को देख कर। अब थोड़े ही दिनों में एक काम से तो ईश्वर छुट्टी दे देंगे। जब अरुणिमा अपने छोटे भाई को साथ लेकर अपने पिता के जलपान का सामान लेकर जाने लायक हो जावेगी।

उमानाथ अपनी पत्नी की इतनी कार्य-पटुता देखकर और इसकी

कड़ी मेहनत पर मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद दिया करते थे और मनाया करते थे कि ऐसी ही स्त्री संसार में सब को मिले। यही नहीं, बल्कि यह भी कहते कि ऐसी ही नारी के बिना 'घर भूत का डेरा' बना करता है।

सुखरानी भूखे-प्यासे और थके आये अपने पति की अगवानी करती, पसीना होने पर पंखा झलती, जाड़ों में आग जलाकर ठंडक दूर करती, पैरों का धोया जल सिर चढ़ाती और अपना भाग्य सराहा करती थी। वह चाहती थी कि "मेरे पति-देव बाल-गोपाल सहित मज़े से रहें और उनकी कीर्ति चन्द्र-कला की तरह बराबर बढ़ती रहे।"

दम्पति के पुण्य-प्रताप से ही घुँघराले बालों वाली बच्ची मिली। इसका कोख से पैदा होना अखिलेश के आने का कारण बना। अखिलेश अपनी तोतली बोली से सब का जी बहलाता था। दोनों की अवस्था में तीन साल का अन्तर था। जब अरुणिमा अपनी उँगली पकड़ाकर अखिलेश को पैरों के बल चलाने लगती तब माता और पिता इसे देख वात्सल्य-रस में डूब जाते और अपने इष्ट-देव को मनाते कि हमारी सन्तानें चिरजीवी बनें और अपने देश और जाति की सेवा करें। दूसरे दम्पतियों की तरह यह नहीं कहते सुने जाते थे कि "हमारी सन्तानें जो कर बड़ी होंगी, तो भीख माँग कर ही अपना पेट भर लेंगी। वास्तव में ऐसी दम्पतियाँ ही गुलाम भारतवर्ष में पैदा हों तभी इस देश का कल्याण होगा, रनपुरा गाँव के प्रत्येक समझदार व्यक्ति की यही धारणा थी।

उमानाथ का कच्चा मिट्टी का बना घर, रनपुरा गाँव में एक कोने पर था। उसके पास ही एक बरसाती नदी बहा करती थी। गर्मियों और जाड़ों में छोटे-छोटे बच्चे इसमें से होकर इस पार से उस पार आया-जाया करते थे। जानवरों को इन ऋतुओं में पानी के लिए तरस जाना पड़ता था, क्योंकि यह नदी छोटी-छोटी तलैयों के रूप में बदल जाया करती थी और बरसात में गोस्वामी तुलसीदास की "क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई" वाली युक्ति को चरितार्थ करने में तन्मय दिखाई पड़ती थी। इस समय मिट्टी के घड़ों की घंडई अथवा छोटी नावों पर लोग चढ़कर पार उतरा करते थे। सुखरानी को इन दिनों अरुणिमा और अखिलेश को उधर न जाने देने और उनकी देख-रेख करने का नया काम भी बढ़ जाया करता था। सुखरानी अपने घर को अच्छी तरह से लीप-पोत कर साफ़-सुथरा रखती थी। उसके दरवाज़े की दाहिनी तरफ एक छप्पर खड़ा किया गया था, उसे भी हर आठवें दिन गोबर से लीपती थी। उसमें एक तरफ लकड़ी का एक तखत पड़ा रहता और दूसरी ओर चबूतरे के ऊपर टाट बिछा रहता था। ताक में तम्बाकू की पोटली और कोढ़े में उपले की आग बराबर सुलगती रहती। चिलम और गौरिया भी वहीं पास ही रखी रहती। इस प्रकार यह उमानाथ की चौपाल आगन्तुकों का स्वागत करने के निमित्त सदैव तत्पर रहा करती थी। छप्पर के ऊपर लौकी और कुम्हड़े की बेलें फैली हुई थीं और बेवक्त के आने वाले अतिथियों के लिए इसी से साग-भाजी का काम चलाया जाता था।

गाँव में राय साहब की जमींदारी थी। रिआया की देख-रेख करने वाला कोई न था। राय साहब को रोज़ ज़रूरत बनी रहती थी। अगला

लगान वसूल करके खर्च कर डाला करते थे। हाँ, इतना था कि राय साहब की बेफिक्री से किसान हारी-बेगारी से, नजराना और दूसरी हुकूमतों से छुट्टी पा गये थे। इस प्रकार राय साहब की आमदनी कम और व्यय अधिक हुआ करता था। ऋण का भार निरंतर बढ़ते रहने से अन्त में क्या दशा होगी, राय साहब इसे जानते थे, किन्तु परिस्थितियों से मजबूर थे। कुछ राय साहबी का रोब, कुछ परम्परागत की मर्यादा—इन्हीं दोनों के फेर में पड़कर थोड़े ही दिनों में वे हाथ-पैर हिलाने लायक न रहे।

उमानाथ कभी-कभी अफसोस करते और सुखरानी से राय साहब की हालत बताया भी करते थे। वह यही कहा करते थे कि एक बना-बनाया घर बिगड़ा जा रहा है; पीछे हाथ मलने के अतिरिक्त और कुछ न रह जायगा। राय साहबी की झूठी शान में पड़कर हुक्कामों की खातिर करने ही में साल बीत जाता है। न जाने पद पाने की कौन-सी लिप्सा है जिसके कारण आज सैकड़ों घर बरबाद हो रहे हैं।

नित्य-प्रति सायंकाल गाँव के बड़े बूढ़े और सभी उमानाथ की चौपाल में इकट्ठा होते और अपने दुःख-सुख की राम-कहानी सुनाते। देश-दुनिया की भी चर्चा चलती, सुरती-तम्बाकू की रस्म अदा होती। कभी-कभी रामायण अथवा महाभारत की कथा भी होती। एक व्यक्ति चौपाई पढ़ता तो दूसरा उसका अर्थ कहता। बीच-बीच में कभी अरुणिमा और कभी अखिलेश अपने बाल-अभिनयों से उपस्थित लोगों का मनोरंजन करते। फिर दूसरे दिन का कार्य-क्रम निश्चित करके लोग अपने-अपने घर के लिए प्रस्थान किया करते थे।

एक दिन की बात है। सुखरानी ने कहीं किसी को कानाफूसी करते सुना कि उमानाथ जो कुछ कमाते-धमाते हैं, वह सब रोज की मजलिस में उड़ जाता है। उन्हें अपने नौनिहाल बच्चों के भविष्य का कुछ खयाल नहीं है। नामवरी और गृहस्थी दोनों एक साथ थोड़े ही निभ सकती है। दो-चार बरस में अरुणिमा की शादी करनी होगी। वह बालिग हो चली है। सब दिन समान नहीं रहते। आज चलती है, कल गाड़ी रुक जाय, तब क्या होगा? सुखरानी को तो इसकी चिन्ता अवश्य है। मगर उमानाथ? उमानाथ तो पूरे मस्त औलिया हैं। लड़की भी अजीब है। मर्दों की तरह घूमती, बातें करती और तो और पूरी मेम मालूम देती है; न जाने क्या लिखा-बदा है? तिरिया जाति का अधिक सिर चढ़ना, ज्यादा बोलना और परदा तोड़ कर बाहर निकलना, यह अच्छे लक्षण नहीं हैं। अखिलेश को पढ़ाना है, फिर उसकी भी सगाई करनी होगी। तब उमानाथ को आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

सुखरानी चुपचाप इन बातों को सुनकर सीधे घर आई। रसोई के प्रबन्ध एवं जानवरों के चारा-पानी के इन्तजाम में उस वक्त वह सब कुछ भूल गई। लेकिन उमानाथ के घर में कदम रखते ही उसे एक-एक करके कानाफूसी वाली बातें याद आने लगीं। कभी वह सोचती कि आज दिल खोलकर उनसे सब कहूँ, फिर सोचती कि पड़ोसी सुनेंगे तो क्या कहेंगे! लेकिन जो बात एक न एक दिन होने वाली है उसे समय रहते प्रगट न करना दिल की कमजोरी है। यही नारी-जाति की कायरता संसार में इसे बंदी बनाये हुए है।

अन्त में उसने खूब सोच-विचार कर निश्चय किया और कहा—"तुम कुछ आगे की भी सोचते हो या अपने भूत और वर्तमान से ही संतुष्ट हो? जिस बात के लिये मैं निश्चय कर चुकी थी कि जबान न खोलूंगी, किन्तु तुम्हारी करतूतों को देख कर मुझे जबान खोलनी ही पड़ी। तुम कहोगे कि औरतें क्या जानें, संसार की गति-विधि? ठीक है, संसार के रंग-ढंग से मुझे क्या मतलब! मुझे तो अपनी ही दुनिया से काम है। जिसकी दुनिया जितनी ही छोटी होती है उसे उतना ही अधिक मानसिक आनन्द मिलता है। उसे सोचने-समझने का अवसर मिलता है। उसे अनेकों प्रकार की झंझटों और झगड़े-बखेड़ों से क्या काम? किन्तु मैं देखती हूँ कि मुझे उतने ही से सन्तोष नहीं, बेकली घेरे रहती है; पता नहीं, बड़ी गृहस्थी वालों की तबियत कैसे चैन पाती होगी? उसके सब काम किस प्रकार सम्पन्न होते होंगे? करता-धरता तो सब कुछ ईश्वर है, परन्तु हरएक व्यक्ति को अपने भविष्य की चिन्ता रहती है। लेकिन तुम्हें देखती हूँ कि इस विषय पर बात-चीत करते ही दूसरे प्रसंग बदल कर जान छुड़ाना चाहते हो।"

उमानाथ कुछ देर चुप रहे फिर बोले—"आज कोई नई बात हुई है क्या?"

सुखरानी ने कहा—"नहीं तो, सब रोज की बातें हैं। तुम्हारी कीर्ति की सुवास अब पड़ोसियों को तीव्र लगने लगी है।"

"यह तो दुनिया है। कोई किसी का नहीं होता। सब स्वार्थवश अपनी-अपनी राह पकड़े चले जा रहे हैं।" कुछ उदासीन भाव से उमानाथ ने कहा।

एक दिन की बात है। सुखरानी ने कहीं किसी को कानाफूसी करते सुना कि उमानाथ जो कुछ कमाते-धमाते हैं, वह सब रोज की मजलिस में उड़ जाता है। उन्हें अपने नौनिहाल बच्चों के भविष्य का कुछ खयाल नहीं है। नामवरी और गृहस्थी दोनों एक साथ थोड़े ही निभ सकती है। दो-चार बरस में अरुणिमा की शादी करनी होगी। वह बालिग हो चली है। सब दिन समान नहीं रहते। आज चलती है, कल गाड़ी रुक जाय, तब क्या होगा? सुखरानी को तो इसकी चिन्ता अवश्य है। मगर उमानाथ? उमानाथ तो पूरे मस्त औलिया हैं। लड़की भी अजीब है। मर्दों की तरह घूमती, बातें करती और तो और पूरी मेम मालूम देती है; न जाने क्या लिखा-बदा है? तिरिया जाति का अधिक सिर चढ़ना, ज्यादा बोलना और परदा तोड़ कर बाहर निकलना, यह अच्छे लक्षण नहीं हैं। अखिलेश को पढ़ाना है, फिर उसकी भी सगाई करनी होगी। तब उमानाथ को आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

सुखरानी चुपचाप इन बातों को सुनकर सीधे घर आई। रसोई के प्रबन्ध एवं जानवरों के चारा-पानी के इन्तजाम में उस वक्त वह सब कुछ भूल गई। लेकिन उमानाथ के घर में कदम रखते ही उसे एक-एक करके कानाफूसी वाली बातें याद आने लगीं। कभी वह सोचती कि आज दिल खोलकर उनसे सब कहूँ, फिर सोचती कि पड़ोसी सुनेंगे तो क्या कहेंगे! लेकिन जो बात एक न एक दिन होने वाली है उसे समय रहते प्रगट न करना दिल की कमजोरी है। यही नारी-जाति की कायरता संसार में इसे बंदी बनाये हुए है।

अन्त में उसने खूब सोच-विचार कर निश्चय किया और कहा—"तुम कुछ आगे की भी सोचते हो या अपने भूत और वर्तमान से ही संतुष्ट हो ? जिस बात के लिये मैं निश्चय कर चुकी थी कि जबान न खोलूंगी, किन्तु तुम्हारी करतूतों को देख कर मुझे जबान खोलनी ही पड़ी। तुम कहोगे कि औरतें क्या जानें, संसार की गति-विधि ? ठीक है, संसार के रंग-ढंग से मुझे क्या मतलब ! मुझे तो अपनी ही दुनिया से काम है। जिसकी दुनिया जितनी ही छोटी होती है उसे उतना ही अधिक मानसिक आनन्द मिलता है। उसे सोचने-समझने का अवसर मिलता है। उसे अनेकों प्रकार की झंझटों और झगड़े-बखेड़ों से क्या काम ? किन्तु मैं देखती हूँ कि मुझे उतने ही से संन्तोष नहीं, बेकली घेरे रहती है; पता नहीं, बड़ी गृहस्थी वालों की तबिअत कैसे चैन पाती होगी ? उसके सब काम किस प्रकार सम्पन्न होते होंगे ? करता-धरता तो सब कुछ ईश्वर है, परन्तु हरएक व्यक्ति को अपने भविष्य की चिन्ता रहती है। लेकिन तुम्हें देखती हूँ कि इस विषय पर बात-चीत करते ही दूसरे प्रसंग बदल कर जान छुड़ाना चाहते हो।"

उमानाथ कुछ देर चुप रहे फिर बोले—"आज कोई नई बात हुई है क्या ?"

सुखरानी ने कहा—"नहीं तो, सब रोज की बातें हैं। तुम्हारी कीर्ति की सुवास अब पड़ोसियों को तीव्र लगने लगी है।"

"यह तो दुनिया है। कोई किसी का नहीं होता। सब स्वार्थवश अपनी-अपनी राह पकड़े चले जा रहे हैं।" कुछ उदासीन भाव से उमानाथ ने कहा।

"यह बात इधर-उधर टाल देने की नहीं है। इस पर खूब विचार करने की जरूरत है। अरुणिमा और अखिलेश के लिये भी हमारा कुछ कर्तव्य है या नहीं? जिन्दगी का क्या ठिकाना? इस बोलते पिंजरे में से हम दोनों न जानें कब प्रस्थान कर जाएँ।" कहते-कहते सुखरानी का गला भर आया। वह रुका हुआ अश्रु-स्रोत आँखों का बाँध तोड़ कर फूट निकला। नारी-जाति का हृदय-दौर्बल्य इससे अधिक और क्या हो सकता है? बात-बात में वह प्रगट हुआ करता है उमानाथ। अपनी पत्नी को सान्त्वना देने लगे।

सुखरानी चुप हुई, मगर उसकी विह्वलता कम होती न देख कर उन्होंने कहा—

"हमें अपने दुध-मुँहे बच्चों को वर और वधू के रूप में थोड़े ही देखना है। हमारी यह भी इच्छा नहीं है कि इनकी सुकुमार मनोवृत्तियों को जंजीरों से कस कर बाँध देने से ही इनका भविष्य सुखमय होगा। हम यह भी नहीं सोचते कि बड़े होने पर इनकी शादी न हो सकेगी। हमें तो इससे भी आगे बढ़ कर समाज की रोग-रूढ़ियों को तोड़ कर एक नवीन समाज की रचना करनी है। जो इन्हीं सुकुमार हस्तियों द्वारा—यदि ईश्वर चाहा तो—होकर रहेगा। माता-पिता का अपनी संतानों के प्रति जो कर्तव्य होना चाहिये उसका श्रीगणेश हमने कर ही दिया है। लाड़-प्यार में वे बिगड़ नहीं रहे हैं। खाने-पीने और पहिनने की उनकी अपनी रुचि के साथ वे विद्योपार्जन में लग गये हैं। इसी पर उनका भविष्य निर्भर करता है। न तो मुझे लोक-लज्जा की परवाह है और

न भय। संसार की पुरानी परिपाटी अब दफ़नाई जा चुकी है और उस पर नयी इमारत बनायी जा रही है। यदि इसके योग्य कोई अपनी सन्तानों को न बनायेगा तो वह आगे चल कर हाथ मलेगा और पछताएगा। तुम्हें याद रखना चाहिये कि तुम उमानाथ की धर्म-पत्नी हो। परदे की आड़ में आज न जाने कितने अनर्थ हो रहे हैं। ऐसे परदे की मुझे परवाह नहीं। सारा संसार इस बात को जानता है कि इस कुप्रथा ने ही हमारा सत्यानाश किया, जिस विनाशकारी प्रथा ने हमें श्मशानघाट पहुँचाया, तुम्हीं बताओ, क्या उसकी पूजा हमें अब भी करनी चाहिये? में तो नहीं समझता कि कोई समाज का हितैषी और सहृदय व्यक्ति इसका कभी समर्थन करेगा। हाँ, एक बात ज़रूर है कि अगर हम किसी कुमार्ग पर चलते हों, कोई हानिकारक काम करते हों, हम में कोई दोष पैदा होता हो, तो तुम्हें पूरा अधिकार है कि तुम मुझे सुमार्ग पर चलाने के लिये भला-बुरा सब कुछ कह सकती हो। मगर यह नहीं कि 'कौवा कान लिये जा रहा है" और अपना कान न देख कर उसके पीछे डंडा लेकर दौड़ना कहाँ की बुद्धिमानी होगी? मैं तो वही करता हूँ जो मेरी आत्मा कहती है। किसी की देखा-देखी अथवा लोभवश कोई सफल नहीं हो सकता। काम में लगन और तत्परता होनी चाहिये। ईश्वर की दया से यदि मेरा संकल्प पूर्ण हुआ तो यही ईर्ष्या-द्वेष रखने वाले व्यक्ति ही कहेंगे—हम गलत रास्ते पर थे और उमानाथ का ही रास्ता ठीक था।

सुखरानी ने बीच ही में रोक कर कहा—"इस पर भी लोगों की उँगलियाँ उठ रही हैं कि औरतों को पढ़ाई-लिखाई से क्या मतलब? क्या उन्हें

भी किसी दफ्तर में काम करना है ?"

उमानाथ ने कहा—"इससे बढ़ कर अब हमारा अज्ञान और क्या हो सकता है ? क्या स्त्रियाँ सिर्फ़ चक्की चलाने, चूल्हा-चौका करने और बेकार घरों में बैठ कर कलह मचाने के लिये ही पैदा हुई हैं ? पता नहीं, जिनके लिये "काला अक्षर भैंस बराबर" उन्हें सीता, महारानी द्रौपदी आदि का नाम भी तो न मालूम होगा। कहने दो, कहने से क्या होता है ? सुखरानी, देखना—ईश्वर तुम्हें वह दिन जल्द दिखावेगा—कि यही तुम्हारी दुबली-पतली सुकुमार हाथों वाली अरुणिमा और हमारे कलेजे के टुकड़े अखिलेश हमारे नाम को संसार में अमर करने वाले बनेंगे। तुम संतोष के साथ अपना काम करो। ईश्वर हमारा सहायक है। अपनी राम-मड़ैया में राम का भजन करो। हमारे शत्रु भी सुखी रहें। यह इच्छा रखते हुये अपने आँखों के तारों की देख-रेख करो, वे ही हमारी धन-दौलत हैं, धर्म-कर्म और सर्वस्व हैं। देखो दोनों कैसे मुसकराते दोपहर की छुट्टी में घर की ओर स्कूल से दौड़े चले आ रहे हैं। उनका मुँह भूख और प्यास से कुम्हला गया है। अरुणिमा को प्रारम्भिक शिक्षा देने के उपरान्त उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिये उसकी इच्छा पर छोड़ देना अच्छा होगा और अखिलेश को तो किसी विश्वविद्यालय का स्नातक बनाना ही है।"

अरुणिमा ने पिता के पास पहुँचते ही गुरुजी की कही हुई पैसे वाली बात कही। उमानाथ ने कहा—"अरुणिमा, लड़कियों को तो सरकार निःशुल्क शिक्षा देती है। हाँ, अखिलेश की मासिक फ़ीस ज़रूर देनी है।"

अखिलेश ने कहा—"नहीं पिताजी। हमारी दोनों की फ़ीस मास्टर साहब बराबर लेते हैं। माँ से कई बार माँग कर बहिन ने पंडितजी को दिया है। अगर ऐसी बात होती तो पंडितजी क्यों कहते ?"

सुखरानी ने कहा—"इमदादी पाठशाला है। गाँव-घर के ही पुरोहित पंडित सरजूप्रसाद शास्त्री पढ़ाते हैं। अगर अरुणिमा की फ़ीस वे माँगते हैं तो दे देने में कोई हर्ज नहीं मालूम होता। घर के अभिभावकों की तरह बड़े प्रेम से शिक्षा देते हैं।"

उमानाथ ने कहा—"अब तो वह सरकारी हो गई है। दो अध्यापक और आ गये हैं।"

अखिलेश ने कहा—"और तो क्या, अजी अभी तो उनको सरकार की ओर से सिर्फ़ छः रुपये मासिक ही तो मिलते हैं। आगे चल कर चाहे जो मिले। बहुत-से लड़के तो उन्हें आटा, चावल, दाल, घी और तरकारी भी दिया करते हैं।"

उमानाथ ने हँसकर कहा—"सुनो, इनकी भूमिका ! अरुणिमा, तू क्यों चुप है ?"

अरुणिमा ने कहा—"पिताजी, भाई साहब सब कुछ कह ही रहे हैं।"

सुखरानी बोली—"अच्छा चलो, तुम दोनों खा लो। खाना थाली में रखा है। ठंडा हो जाने पर मक्खियाँ उसे खराब कर देंगी। तुम लोग

जब तक खाओ तब तक मैं सब सामान तुम्हारे गुरुजी के लिए ठीक किये देती हूँ।"

दोनों ने प्रसन्नचित्त होकर हाथ धोया और खुशी-खुशी खाना खाने लगे। इधर सुखरानी ने पुराना चावल, अरहर की दाल, गेहूँ का आटा, खटाई, नमक और एक छोटी-सी चुकिया में घर की गाय का घी रखा। दोनों धीरे-धीरे खाना खाते जा रहे थे और माता का प्रबन्ध देख कर मन ही मन प्रसन्न होते जाते थे। पैसा और घी तो अखिलेश ने अपने हाथों में लिया और आटे-दाल वाली पोटली अरुणिमा के हिस्से में आई। दोनों दौड़ते-हांफते जल्दी ही गुरुजी के पास पहुँचे। पंडित सरजूप्रसाद ने दोनों को उनके सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और उमानाथ और सुखरानी की प्रशंसा करते नहीं अघाये।

— —

दूसरा परिच्छेद

चिन्तामणि के पिता की जमींदारी में रनपुरा गांव दो-तीन साल हुए आ गया था। यहाँ के पुराने जमींदार राय साहब सुखदेव सहाय क़र्ज़ से इतने बोझिल हो गये थे कि क़िसानों से अगले सालों का लगान लेकर अपना काम चलाते थे। कोई महाजन अब इनको एक कानी कौड़ी भी देने के लिए तैयार न होता था। शराब तो नहीं पीते

थे, मगर जुए के व्यसन ने इनको इस दशा में पहुँचाया था। कभी फ्लश होता, कभी कौड़ी ही फेंकी जाती। औरों के लिए दिवाली एक दिन के लिए आती मगर यहाँ तो बारहों महीने दिन-रात दिवाली ही रहती। जिस दिन कुछ मिल जाता कलिया-कबाब का दौर चलता। इष्ट-मित्रों की बड़ी आव-भगत होती। यह अन्धेर कब तक चलेगा, कितने दिनों तक रहेगा—खुद उनका दिल कभी-कभी कह उठता।

आखिरकार वह दिन भी आ गया। कई दीवानी की डिगरियाँ इजरा हो चुकी थीं। माल के भी दो-तीन मुकदमे चलने लग गये थे। डिगरी कैसे चुकाई जावे, मुकदमे के लिए मुखतारों का मेहनताना और पेशकार की पेशी के लिए रुपये कहाँ से आयें, और तो और सफ़र-खर्च तक का ठिकाना नहीं था। गिरफ़्तारी के लिये वारंट निकल चुका था। दो-एक दिन में जो कभी न हुआ था, वही होगा—जेल की हवा खानी पड़ेगी ऐसा राय साहब समझने लगे।

लेकिन उन्हीं दिनों कांग्रेस सरकार ने डिगरी मुलतवी का हुक्मनामा निकाल दिया। राय साहब का सूखा शरीर फिर हरा हो गया। जान में जान आई। फिर क्या था, फिर वही फ्लश और कौड़ी! उन्होंने यह न सोचा कि जूए ने इतने बड़े कौरव और पांडव के राज्य का सर्वनाश किया तो मेरी क्या बिसात कि इसके झंझावात के आगे ठहर सकूँ। मुलतवी कानून के होते हुए भी ऐसी आवश्यकता आई कि खुद इन्होंने चिन्तामणि के पिता नगरसेठ बिहारीमल के यहाँ काशी में जा कर अपना सब इलाका बैनामा कर दिया।

महाजनों से पिंड छूटा। बने दिन के मित्रों का आना-जाना बंद हुआ। जूआ और फ़्लश सब का चसका मिटा। अब सिर्फ़ नून, तेल, लकड़ी की ही याद रही। उनके सिर जो अब राय साहब के नाम से साकितुल मिलकियत होकर लग गई थी। वही जीवनाधार ठहरी। अब न तो पुराने मुफ़्तख़ोर मित्रों का दौर था न वह चहल-पहल ही थी। जिन्होंने राय साहब को इस दशा में पहुँचाया था उन सब को तिलांजलि दे दी। आये दिन पुराने रईस इसी प्रकार बिगड़े हमारी आँखों के सामने अपना अभिनय करते दिखलाई पड़ते हैं। देश-दुनिया की रीति-भाँति देख कर भी इनकी आँखें अपना भविष्य नहीं निहारतीं। वे तो अपने वर्तमान को ही आनन्ददायक देखकर चैन की वंशी बजाते हैं हैं लेकिन यह नहीं सोचते कि यही सुखकारी दिन बुरे दिन के कारण होंगे। जो वैभव और सुख आज अपनी निराली छटा दिखा-दिखा कर एक नवीन जगत की रचना करते हैं वे ही थोड़े दिनों में दुःख की घड़ियाँ लाते दिखलाई पड़ते हैं। आज का यह जर्जरित समाज ऐसे ही दुखियों का समूह बन रहा है। क्लेश और आर्तनाद का ही राज्य इसमें है। फटे-पुराने कपड़ों का ही साज और सामान है। इन्हें देखकर भी दूसरे सीख नहीं लेते। बात यह है कि धन का मद मतवाला बना देता है! यही क्रम यदि जारी न रहे, तो सृष्टि का काम ही रुक जाय। और ब्रह्मा बैठ कर मक्खियाँ थोड़े ही मारा करते हैं? यही घर घरौना बनाना-बिगाड़ना उनका दिन-रात का काम है। उनका कारखाना सर्वदा यही बनाता-बिगाड़ता रहता है। राय साहब अब सब चीज़ों से निश्चिन्त होकर अपनी राह आना और अपनी राह जाना, खाना-कमाना और राम का भजन करना इसी में अपना जीवन व्यतीत

करने लगे।

बिहारीमल ने बैनामा अपने लड़के चिन्तामणि के नाम से लिखाया। चिन्तामणि इन दिनों स्थानीय हाई स्कूल में शिक्षा पाता था। कभी-कभी अपने गाँव रनपुरा भी जाता था। तब तक यहाँ छावनी भी नहीं बन पाई थी। उमानाथ की प्रशंसा बिहारीलाल सुन चुके थे। इन्होंने सेट के बड़े अनुरोध पर उनके यहाँ जिलेदारी कर ली, क्योंकि अखिलेश को इन्हें दो साल में ही विश्वविद्यालय में भरती कराना था। इसी लिए दिल न होते हुए भी इन्होंने यह काम करना स्वीकार कर लिया। चिन्तामणि अपने पिता के साथ जब कभी रनपुरा में आता तो उमानाथ की चौपाल में डेरा डालता। दो-चार दिन रहने के बाद ये लोग वसूल तहसील लेकर बनारस चले जाते।

चिन्तामणि अपने पिता से कहता—"यह ठीक नहीं लगता कि हम बनारस से आकर एक छप्पर में ठहरें।"

सेठजी कहते—"तो क्या यहाँ भी राजमहल बनवाना चाहते हो?"

"और कुछ नहीं तो एक कच्ची छावनी ही यहाँ बन जाती।" चिन्तामणि ने अनुरोध-पूर्वक कहा। उमानाथ से भी इस विषय में राय ली गई।

उन्होंने कहा—"जैसे आपका यह घर वैसे ही जो बनेगा, अच्छा ही होगा।"

बस फिर क्या था। चमार बुलाये गये, भीत का ठेका हो गया, कुम्हारों ने खपरैल का बयाना लिया, लुहारों ने बाग की लकड़ी काटकर चीरने का काम शुरू कर दिया। लोहा-कंकड़ के लिए बनारस से भेजने का तय हुआ। इन कामों के लिए उमानाथ को कुछ रुपये भी मिल गये। काम आरम्भ हो गया।

चिन्तामणि ने कहा—"ऐसा होना चाहिए कि इस बार जब हम लोग यहाँ आवें तो इस नई छावनी का गृह-प्रवेश किया जावे।"

उमानाथ के घर आने-जाने में चिन्तामणि भी अखिलेश और अरुणिमा से हिल-मिल गया। अवस्था में तीनों एक दूसरे के समान न होते हुए भी एक के बाद दूसरे पैदा हुए हों ऐसा मालूम देता था। अखिलेश की देखा-देखी चिन्ता भी अरुणिमा को बहिन कहने लग गया था। सुखरानी तीनों को बड़ा स्नेह करती थी। चिन्ता को वह अपनी तीसरी सन्तान समझने लगी थी।

चिन्तामणि का लालन-पालन बड़े लाड़ प्यार से हुआ था। माता-पिता का इकलौता पुत्र ऐसे वायुमंडल में पला था कि नागरिक जीवन के आगे उसे ग्रामीण जीवन पसन्द न आता था। वह कभी-कभी कहता कि यहाँ रोज तो न तरकारी मिलती है, न कुलफी मिठाई। वहाँ की सरसता यहाँ नीरसता में बदल गई है। साइकिल, एक्का, मोटर के लिए रास्ते भी नहीं हैं। नल-कल भी नहीं कि आसानी से पानी मिल सके। वहाँ जैसी यहाँ पाठशाला भी नहीं है। वहाँ तो हमारे अध्यापक कुर्सी पर बैठते और

लड़के-लड़कियाँ सभी बेंच पर, और टेबुल लगाकर आराम से बैठते हैं। यहाँ तो पण्डित जी एक झिलगही चारपाई पर बैठते और लड़के-लड़कियाँ धूल लपेटे जमीन पर। उनके शरीर पर फटे-पुराने चीथड़े होते हैं।

अरुणिमा ने इन बातों को सुनकर कहा—"भाई चिन्ता, तुम्हारा कहना ठीक है पर शहर की जल-वायु क्या देहाती जल-वायु की समानता कर सकती है? यहाँ गुदड़ी के लाल पाये जाते हैं। यहाँ सूखे साग ही में कुलफी-मिठाई का आनन्द आता है। हाँ, एक बात जरूर है कि वह अमीरों की बस्ती है और यह हम गरीबों की। ईश्वर ने सब को दिया है।"

अखिलेश इन दोनों को बातों में लगा देख बीच ही में बोल उठा—

"स्कूल की बेला हो गई। चलो, नहीं तो पंडितजी बिगड़ने लगेंगे।"

चिन्ता ने कहा—"चलो, आज हम भी तुम लोगों के स्कूल में चलेंगे।"

दोनों ने 'हाँ,' कह कर चिन्ता को भी अपने साथ ले लिया।

स्कूल में पहुँचने पर चिन्ता क्या देखता है कि जो छात्र आते हैं, वे सब से पहले गुरुजी का पैर छूते और आशीर्वाद पाकर अपनी जगह पर धीरे से बैठ जाते हैं और किताब खोलकर अपना सबक दोहराते हैं। चिन्ता ने देखा और सोचा कि नगरों के स्कूलों जैसा यहाँ कोलाहल नहीं है। बिलकुल

शान्ति विराज रही है, वह भी अरुणिमा के पास जमीन पर बैठना चाहता था कि पंडित सरजूप्रसाद जी ने बड़े प्रेम से उसे बुलाकर अपनी चारपाई पर एक ओर बैठाया और हाल-चाल पूछने लगे।

पंडित जी ने कहा—"बेटा, यह गरीबों का स्कूल है। अब तो तुम्हारी जमींदारी में आ गया। अपने पिता से कह कर लड़कों के पानी के लिए एक लोटा-गगरा और रस्सी का प्रबन्ध करा देते तो अच्छा होता। ईश्वर की सृष्टि में जमींदार यदि पिता है तो प्रजा उसकी सन्तान! यही किया-दिया परलोक में काम आता है।"

चिन्ता ने कहा—"पंडितजी, मैं आपकी आज्ञा का पालन जरूर करा दूँगा।"

लड़के-लड़कियाँ सभी हसरत भरी निगाहों से चिन्ता को देखते, उसका पहिनावा, सफाई, बोल-चाल सभी पर वे सब मुग्ध थे। अपने दिलों में वे कहते—"हम गरीबों की दुनिया में यह देवदूत कैसे आ गया। क्या हमारी किस्मत ऐसी नहीं? क्या इनके परमात्मा कोई दूसरे हैं?"

दूसरे दिन प्रातःकाल ही उमानाथ ने गगरा, लोटा, एक नई रस्सी खरीद कर स्कूल में भेजवा दी। पंडित जी थोड़ी बहुत तुकबन्दी भी कर लिया करते थे। एक गड़बड़ छन्द धन्यवाद का लिखकर सेठ बिहारीमल के यहाँ भेज दिया।

चिन्ता की तबीअत अब ऊब गई थी। दशहरे की छुट्टी भी समाप्त होने वाली थी, उसने पिता से कहा—"अब चलना चाहिए।" दोनों का सामान

बिस्तर-बन्द में बँधा, दो मजदूर बुलाये गये। पास वाले स्टेशन तक उमानाथ भी गये। जाते वक्त चिन्ता ने जोर देकर कहा—"अखिलेश को मेरे साथ बनारस में ही पढ़ना होगा और इस बार जब मैं छावनी आऊँ, ज़रूर तैयार मिले।"

उमानाथ ने नमस्ते करके कहा—"ऐसा ही होगा।" और अपना रास्ता लिया।

उमानाथ ने दो तीन महीने तक रात-दिन अथक परिश्रम करके, मजदूरों के साथ-साथ स्वयं काम करके छावनी तैयार कराली। वह काठ-कबाड़, खपरैल जो चारों तरफ बिखरा पड़ा था; दीवारों और छत पर चढ़ गया। खपरैल से छवाई भी शुरू हो गई। उसमें रसोईघर अलग, बैठक और सोने का कमरा अलग-अलग बना। छावनी बड़ी ठोस बनी। पास ही एक कुआँ और फुलवारी भी उमानाथ ने अपने मन से बनवा दी। छावनी तैयार होने की खबर भी उन्होंने बनारस भेज दी।

चिन्ता ने सब सुना, उमानाथ की कुएँ और फुलवारी वाली सूझ पर मन ही मन प्रसन्न भी हुआ। परीक्षा होने के कारण विवश था। उसने लिख भेजा—"गर्मी की छुट्टियों में मैं आ रहा हूँ, परीक्षा हो रही है। भाई अखिलेश और अरुणिमा को नमस्ते।"

उमानाथ ने उचित रीति से छावनी में लगे खर्च का हिसाब तैयार कर लिया। इसी बजट के अन्दर उन्होंने कुआं एवं फुलवारी भी बनवा ली थी। गर्मी की छुट्टी हो चुकी थी। कल ही सेठ जी और चिन्ता आने वाले

हैं। छावनी में मिट्टी लगाई जा रही है। आज शाम तक सफेदी भी हो जावेगी। लिपाई का काम कल प्रातःकाल हो जावेगा। कुछ कुर्सियाँ, चारपाई और तख्त बनारस से बनकर जो पहले ही आ गये थे यथास्थान रखवा दिये गये। सदर दरवाजे के ऊपर अरुणिमा ने अपने हाथों से 'रनपुराधिपति चिन्तामणि निवास' लिख दिया; अब छावनी इस प्रकार सज-धज कर उमा-नाथ के मकान के थोड़े ही फासले पर पूर्ण रूप से चिन्ता का स्वागत करने के लिए उद्यत जान पड़ने लगी।

गाँव वाले देखते और सराहते जमीनों का भी भाग्य हुआ करता है। इसकी दशा सुधर गई। जहाँ गाँव के छोटे लड़के और कुत्ते पाखाना किया करते थे, सुअर सवेरे ही दिखलाई पड़ते थे वहाँ पर ऐसा यह दिव्य स्थान बन गया। ईश्वर-भक्त यह कहते सुने जाते "भगवान का एक मन्दिर बन जाता तो सोने में सुगन्ध आ जाती।"

उमानाथ ने यह सुनकर लोगों से कहा—"आपके गाँव में मुसलमान काफ़ी तादाद में हैं। मन्दिर बनता तो हमारी धार्मिक भावना से उन भाइयों के दिलों को एक प्रकार की ठेस लगती। यहाँ से तो साम्प्रदायिकता के भूत को भगाना है। इसी लिये यहाँ एक राष्ट्र-मन्दिर बनवाया जावेगा जिसमें सार्वजनिक सभाएँ हुआ करेंगी। हमारी और उनकी बरातें ठहरा करेंगी। इस तरह से हम और वे एक होकर बन्दी भारत को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न करेंगे। देखिए, अब उन लोगों के आने का समय हो गया है।"

अखिलेश दौड़ता हुआ आया और कहने लगा—"चिन्ता आ रहा है।" सब लोग अगवानी करने के लिये उठ खड़े हुये।

चिन्ता अपने पिता के साथ छावनी में पहुँचा। गाँव के बड़े-बूढ़े सबको नमस्कार किया। घूम-घूम कर उसने सब चीजें देखीं। उमानाथ ने अवसर पाकर गाँव वालों का झुकाव और अपनी मनोवृत्ति उनके सामने पेश की। चिन्ता ख़ुशी में उछल पड़ा। बोला—"यह सामने जो ईंटें हैं ; कल ही नींव डलवा दी जावे। हाँ, और कल ही गृह-प्रवेश का भी मुहूर्त्त है। हवन आदि की सब सामग्री साथ आई है। थोड़ी-सी साग-भाजी भी आई है। आटा तो आपने पिसवा ही लिया होगा। घी कल सुबह की ट्रेन से आ जावेगा।"

बिहारीमल ने कहा—"ब्राह्मणों के लिये अलग प्रबन्ध होना चाहिये और अन्य लोगों के लिए प्रीति-भोज का प्रबन्ध अलग। उमानाथ, ब्राह्मणों के खाने-खिलाने का काम आप करेंगे और प्रीति-भोज का सारा काम मेरी निगरानी में चिन्ता करेगा। अरुणिमा और अखिलेश भी वहीं रहेंगे।" सेठ ने उमानाथ से सब समझा कर कहा।

आधी रात से ही सारा काम प्रारम्भ हो गया, थोड़ा-सा घी मौजूद था कड़ाहियाँ चढ़ गई। ब्राह्मणों में कई पंक्ति होने के कारण पूरियों के निकालने का चार-पाँच जगह प्रबन्ध करना पड़ा। अगर कोई गरीब होता तो ऐसा करने में उसका कचूमर निकल आता। दूसरे दिन दस बजे तक सब सामान तैयार हो गया। ब्राह्मणों के झुण्ड के झुण्ड चारों ओर से आने लगे। गृह-प्रवेश की सारी क्रिया भी समाप्त हो गई। अब जैसे जैसे ब्राह्मण आते, खाते चले जाते थे। चिन्ता के ही हाथों नींव पड़ी थी। वह भी दस बजे के अन्दर ही हवन इत्यादि कार्यों से निवृत्त

हो गया। ब्राह्मणों के अतिरिक्त चमार, मुसहरे और भिखमंगे, फकीर, साधू सब ने मनमाना खाया। चार बजे सायंकाल तक इधर से फुरसत मिल गई।

सहभोज वाला कार्य भी लगभग पाँच बजे शाम को आरम्भ हुआ। एक टाट पर बैठे हिन्दू और दूसरी ओर अलग मुसलमान खाना खाने लगे। खाने में पूरियाँ और कचौरियाँ, बनारस की कचौड़ी गली को भी मात कर रही थीं। कई तरह का अचार और चटनी खाने में और मदद दे रहे थे। आँवले वाली चटनी खूब बनी थी। दही और चीनी का स्वाद ही कुछ दूसरा था, सब ने भर पेट खाना खाया। पंडित सरजूप्रसाद शास्त्री पूरियाँ परस रहे थे। उनका यह कहना—"बड़ी मुलायम है, एक और" लोगों को खाने के लिए और उकसा रहा था। चिन्ता, अरुणिमा और अखिलेश सब को पानी 'ठंडा जल' कह कर पिला रहे थे।

आठ बजे रात तक सब खाना खा और खिलाकर निवृत्त हुए। रात को बनारस से आई नाटक-मंडली ने अपना 'अछूतोद्धार' नामक ड्रामा किया। बड़े-बूढ़ों और पुरानों ने काफी नाँक और भौंह सिकोड़े और इसके विपरीत नई रोशनी वालों ने इसे खूब पसन्द किया।

अब वसूल-तहसील का सारा काम इसी छावनी में होने लगा। दो-एक दिन बाद सदर दरवाजे पर अंकित वाक्य ने अनायास चिन्ता का मन अपनी ओर आकर्षित किया। वह सोचने लगा—किन सुकोमल करों ने इसे लिखा है। किसी कला-निपुण व्यक्ति की ही यह कृति हो सकती है।

पास ही खड़ी अरुणिमा ने उसे तन्मय देख कर धीरे से कहा—"चिन्ता, किस चिन्ता में पड़े हो ? यह मैंने लिखा है ।"

पीछे घूम कर देखा तो अरुणिमा खड़ी है। उसको देख कर वह स्तब्ध हो गया और मन ही मन कहने लगा देहात में ऐसा सौन्दर्य, ऐसी गठन, काली नागिन जैसे केश वाली यह अरुणिमा ! दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है । ईश्वर की सृष्टि की विचित्रता पर दृष्टि सहसा दौड़ जाती है । हो न हो, यह विधाता की अपूर्व रचना हमें एक दिन भूल-भुलैयाँ में अवश्य डालेगी ।

अरुणिमा ने इसे चुप देखकर फिर कहा—"किसी समस्या के सुलझाव में तो चित्त नहीं उलझा है ।

"हाँ, ऐसी ही बात है ।" चिन्ता प्रगट करते हुये कहा ।

अरुणिमा ने कहा—"क्या वह प्रगट करने योग्य नहीं ?"

"नहीं, समय अपने आप प्रगट कर देगा ।" चिन्ता ने कहा ।

"गर्मी की छुट्टी यहीं बिताने का विचार है न ?" अरुणिमा ने यह कह कर निगाह नीचे कर ली ।

चिन्ता ने कहा—"हाँ, विचार तो यही है ।"

"मेरी पाठशाला भी आज-कल बन्द है ।" अरुणिमा ने हँस कर कहा ।

इन दोनों में घुल-मिलकर बातें होने लगीं। प्रेम-देवता का अभी इन दोनों में से किसी ने दर्शन तक नहीं किया था। हाँ, साधारण उपन्यासों और नाटकों की बहुत-सी प्रेम-कथाएँ इन दोनों ने पढ़ी अवश्य थीं। वही इनकी बात-चीत का आधार था। यह इनकी आरम्भिक किशोरावस्था की भूमिका इन्हें किस अज्ञात स्थान में ले जायेगी—दो में से एक को भी इसका पता न था। अखिलेश मिडिल की परीक्षा दे चुका था। परीक्षा-फल आने वाला ही था, उसका ध्यान बराबर उसी ओर लगा रहता था। इसी की चिन्ता में आज-कल वह कुछ दुबला भी हो चला था। परीक्षा-फल आ गया।

अरुणिमा ने कहा—"भाई अखिलेश, हम लोगों को मिठाई खिलाओ, तो खुश-खबरी सुनाऊँ।"

अखिलेश ने मानो सिर हिला कर इसकी स्वीकृति दी। अरुणिमा ने गजट खोल कर दिखाया। "भाई, तुम प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गये। अरिथमैटिक, साहित्य एवं अंग्रेजी में विशेष योग्यता भी प्राप्त की है।"

"चौदह-पन्द्रह साल की अवस्था और यह योग्यता।" चिन्ता ने कहा। अखिलेश ने कृतज्ञता का भाव दिखलाते हुए सब को सादर अभिवादन किया। तीनों दौड़े उमानाथ और सुखरानी के पास पहुँचे वहीं बिहारीमल भी बैठे थे। इस समाचार से सब को बड़ी खुशी हुई।

बिहारीमल ने कहा—"इसे अब आप चिन्ता के साथ कर दीजिये। वह आठवीं कक्षा में एक साल रहेगा और अखिलेश सातवीं में पढ़ेगा।

दोनों का साथ रहेगा और सब ठीक हो जावेगा। और दोनों के रहने का प्रबन्ध भी विद्यालय के हॉस्टल में कर दिया जावेगा।"

तीसरा परिच्छेद

अरुणिमा एवं अखिलेश अपनी-अपनी कक्षा में दोनों प्रथम श्रेणी के छात्र थे। दो ही साल में प्रारम्भिक शिक्षा, कताई, बुनाई, पढ़ाई, हिसाब-किताब सीख कर बुनियादी तालीम के पंडित बन गये। इसके बाद अखिलेश पास ही की मिडिल पाठशाला में भरती हो गया था। उसने हिन्दी पढ़ने के साथ-साथ अंग्रेजी भी ले ली थी। तीसरे साल के बाद अब उमानाथ के सामने इसकी शिक्षा का दूसरा प्रबन्ध करने की समस्या आई। सुखरानी पुत्र-प्रेम में विभोर होकर अखिलेश की इतनी ही पढ़ाई से संतुष्ट थी, किन्तु अखिलेश ने कहा—

"माँ, तुम स्नेह में पड़कर अपना और हमारा भविष्य अन्धकारमय न बनाओ।"

अरुणिमा ने मन ही मन कहा—"आज मैं भी बालक होती तो मेरा भी पढ़ाई का उद्देश्य पूरा होता। मगर हतभागिनी नारी-जाति की कोख से पैदा बालिका! तू समाज का काँटा है। तुझ से ही पुरुष उत्पन्न होकर तेरी हर एक इच्छा को दबाता रहता है। लक्ष्मी, जिसकी पूजा होनी चाहिये

वह हर जगह दुतकारी जाती है। सब जगह भर्त्सना का बोझ उठाती फिरती है।" खैर, अरुणिमा ने अपने आप ही अपना निश्चय अपने माता-पिता को सुनाकर उनका संशय मिटा दिया। उसने कहा—

"उच्च-शिक्षा प्राप्ति की जगह मैं अपनी मूर्ख बहिनों को साक्षर बनाना ही कहीं अच्छा समझती हूँ। भाई अखिलेश, तुम बनारस के किसी विद्यालय में जाकर अपनी शिक्षा पूर्ण करो और देश तथा जाति के सहायक बनो। दैवयोग से पिताजी को भी सेठ बिहारीमल के यहाँ जिलेदारी मिल गई है। उनका चिन्ता जैसा सपूत भी इस काम में सहायक ही होगा। इसका मुझे पूर्ण विश्वास है और अखिलेश को छात्र-वृत्ति भी अवश्य ही मिलेगी। यही नहीं सूबे में अच्छा नम्बर भी आवेगा। मैं तो समझती हूँ कि प्रान्त भर में सर्वप्रथम नम्बर इन्हीं का रहेगा। ६) माहवार की वह भी सहायता हो जावेगी। मुझसे भी जहाँ तक हो सकेगा यथासमय और यथाशक्ति तुम्हारी सहायता करती रहूँगी। इस अभागिनी को भुलाना मत। यही मेरी प्रार्थना है। अपने समाचारों से बूढ़े माता-पिता को अपनी याद दिलाते रहना। पिताजी, आप मोह छोड़िये! माँ, तुम्हारा स्नेह इसी में है कि भाई अखिलेश को आशीर्वाद दो। आओ, हम दोनों मिलकर भाई की आरती उतारें और उन्हें खुशी मन से एक देश-सेवी और त्यागी स्नातक बनने के लिए विदाई दें।"

अखिलेश सब का आशीर्वाद पाकर माता और पिता के वात्सल्य रस से और बहिन की अपार सहानुभूति से बोझिल हो उठा। वह रोने को ही था कि उसका मित्र और सहायक जमींदार का पुत्र चिन्तामणि

अपनी छावनी से अपना बोरिया-बिस्तर लिवाये वहाँ आ पहुँचा। अरुणिमा कुछ सहम कर पीछे हट गयी। चिन्तामणि और अरुणिमा की भेंट पाठशाला में एवं गर्मियों की छुट्टियों में ही हुआ करती थी, तब तो एक दूसरी दुनिया और दूसरी रीति थी। मगर न जाने आज क्यों चिन्तामणि को सहसा धक्का लगा और उसी का प्रभाव अरुणिमा को भी रोमांचित बनाने वाला हुआ। उमानाथ साइत और ज्योतिष के काफी हामी थे। इसीलिए अखिलेश और चिन्ता को ठीक समय से प्रस्थान कराया। माता सुखरानी घर के बाहर तक आईं, पड़ोसी कुछ दूर तक गये। पिता उमानाथ का विचार स्टेशन तक जाने का था; मगर दोनों मित्रों के अनुरोध से उन्हें भी पीछे लौटना पड़ा। बिहारीमल तो छावनी में ही रह गए थे। अभागी अरुणिमा भी पिता के साथ चिन्ता की अपार प्रीति और भाई अखिलेश की महान ममता को अपने हृदय-प्रदेश में स्थान देकर लौटी। वह कभी उलट कर पीछे देखती तो ठीक उसी समय चिन्ता को भी अपनी ओर निहारता देखती। कुछ दूर निकल जाने पर उमानाथ अरुणिमा को साथ लिये घर आये। अरुणिमा को जब चिन्ता की एक-एक बात याद आती तब वह जी मसोस कर रह जाती थी।

सुखरानी अरुणिमा के विवाह के लिए उमानाथ को रोज एक धक्का लगाती। लेकिन वह तो इस सम्बन्ध में अडिग पहाड़ जैसे निश्चल प्रतीत होते थे। हँसकर बराबर टाल देते; यह सब काम समय आने पर ही हुआ करते हैं। सुखरानी इसकी बातों को सुनकर कभी-कभी झल्ला भी जाती। अरुणिमा को इसकी कानोकान कुछ भी खबर न थी। वहाँ तो अभी प्रेममयी दुनिया में पदार्पण ही नहीं हुआ था। हाँ, उस दिन भाई की बिदाई के—

अवसर पर उसके प्रेम-देव दर्शन देने ज़रूर आये थे, मगर उनका यथेष्ट सत्कार न कर सकी। हाँ, दिल पर इससे एक ठेस ज़रूर लगी, जो नित्यप्रति के कामों में एक खटका देनेवाली बात बन गई।

अरुणिमा को यह पता नहीं था कि उसकी माता उमानाथ को इस सम्बन्ध में काफी उकसा रही हैं। वह तो अपनी धुन में मस्त थी; एक कन्या-पाठशाला खोल ली थी। उसी में ४०-५० कन्याओं को शिक्षा देती थी। स्थानीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से कुछ सहायता भी मिलने लग गई। अवकाश के समय अपने प्राचीन धर्मशास्त्रों एवं नारी-हितकारी ग्रंथों का अध्ययन करती; उसकी चित्त-वृत्ति स्थिर सी हुई जाती थी। उस ओर से जिधर सारी दुनिया बिना मार्ग दिखाये ही अग्रसर होती जाती है। उसका विचार विभिन्न विचार-धाराओं में प्रवाहित न होकर एक ओर एकाग्र हो रहा था। उसे एक ही बात अब खटकने वाली रह गई थी, उसी की उसे चिन्ता थी, उसी के लिए उसके दिल में व्यग्रता थी, उसी के लिए वह लालायित थी और थी उसी के लिए तन्मय और तत्पर। वह किंचित यह चाहती रही हो कि माता-पिता की आश्रित होकर मैं कब तक रहूँगी? इनका साया हटने के बाद वह किस मार्ग की खोजने वाली बनेगी। अगर यह करना ही है तो अभी से अभीष्ट क्यों न तय कर लिया जाये; लेकिन नहीं, इन विचार-परम्पराओं से न तो वह टकराती थी और न विह्वल ही होती थी। उसे चिन्ता थी तो इस बात की, उसे यदि कुछ भय था, तो इस बात का कि कोई उसे दुनिया से अलग न समझ बैठे। वह ऐसी दुनिया बसाना चाहती थी कि जिसमें समानता का व्यवहार हो, स्वत्वों की छीना-झपटी न हो और हो वहाँ दासता का अन्त! इस प्रकार की सुख-

मयी दुनिया का वह स्वप्न देखती और इसको कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न भी करती जाती थी।

अरुणिमा की चलाई कन्या-पाठशाला धनाभाव के कारण एक तो मन्द-गति से चल ही रही थी और दूसरे प्राचीन रूढ़ियों के सम्पर्क से पितामहों के विरोध का शिकार भी वह बन रही थी। इसके आदि गुरु सरजूप्रसाद शास्त्री ही इस दल के अगुआ और प्रमुख व्यक्ति थे।

शास्त्रीजी तो खुल्लम-खुल्ला यह कहते सुने जाते थे कि यह कन्या-पाठशाला हमारी परम्परा के विरुद्ध है। नारी-जाति की धार्मिक भावनाओं के विपरीत है—विरुद्ध है। हमारे आचरण पर कुठाराघात है। परदे के बाहर निकल कर ये लड़कियाँ गजब ढा देंगी। अब तो मर्द के मुकाबिले में लेक्चर देंगी, व्याख्यान सुनावेंगी। यह सब तो होगा ही, सब से बढ़कर खराबी की बात यह होगी कि घर-गृहस्थी कौन सँभालेगा? अरे, सब तो सब, चमारिनी—जिन्हें अब हरिजन कहा जाता है—की लड़कियाँ भी हमारी बहू-बेटियों के साथ बराबर बैठकर पढ़ रही हैं।

इन बातों को सुनकर गाँव का मुखिया बलजोर जो इनका अनन्य भक्त था, नाक-भौंह सिकोड़ कर कहने लगा—"पुरोहित जी, आप क्या अंड-बंड बकते चले जा रहे हैं? इस काम से हमारी लड़कियाँ सुधर रही हैं या बिगड़ रही हैं? आप तो दकियानूसी खयाल के पुराने आदमी ठहरे, आपको क्या पता? जब तक आपके यहाँ हमारी लड़कियाँ पढ़ने जाती थीं, तब तक वे बन रही थीं और अब बिगड़ने लगीं, क्यों?"

"हाँ, हमें क्या पता ! सब कुछ तो तुम्हारे जैसे गोबर-गनेस ही जानने लगे।" सरजूप्रसाद ने आवेश में आकर कहा—"पता चलेगा जब इस शिक्षा से दीक्षित लड़कियाँ तुम्हारे घरों से पराये घरों में जाएँगी और वहाँ से उपालम्भ आना शुरू होगा। मैं भविष्य को सोच रहा हूँ। हमारे ऊपर समाज की जो जिम्मेदारी है, उसे मैं महसूस कर रहा हूँ। देखो, वही आ रही है। अपने लगाये बिरवे को कहीं हानि न पहुँचे यही सोचकर रह जाता हूँ। नहीं तो, क्रोध से सारा शरीर तमक उठता है, लेकिन पहला खयाल रोक देता है। अफसोस तो इस बात का है कि यह सब अपराध इन्हीं विशालकाय हाथों का है। दिल चाहता है कि इन्हीं हाथों को बदला लेने में सहायक बनाऊँ, किन्तु प्रायश्चित के डर से हाथ नहीं उठते।" इतना ही कह पाये थे कि अरुणिमा ने आकर उनके पैर छुए, परन्तु आशीर्वाद तिरस्कार की दृष्टि में मिला।

बलजोर ने शास्त्री पुरोहित का व्यवहार देखा और इधर अरुणिमा का सौजन्य। उदार मन व्यक्ति अपना सारा काम शान्ति से ही करते हैं, किन्तु इसके विपरीत ईर्ष्या-द्वेषवाले व्यक्ति दूसरा ही ढंग अख्तियार करते हैं।

"अरुणिमा, आज हमारी सुशीला पढ़ने नहीं गई। उसके सिर में प्रातः-काल से ही दर्द है। वह तो रोकने से भी नहीं रुकती थी, मगर जब बहुत कुछ कहा सुना गया तब कहीं जाकर रुकी।"

"हाँ चाचाजी, उसी को देखने में आपके घर चली गई थी। इस वक्त तो मामूली हरारत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह प्रसन्न थी।

मैं कह आई हूँ—उसे भोजन हलका दिया जावे।" अरुणिमा ने विनम्र भाव से कहा।

बलजोर ने कहा—"अच्छा बेटी, तुम जाओ। बूढ़े उमानाथ और सुखरानी तुम्हारी राह देखते होंगे।"

"हाँ, जब तक मैं न जाऊँगी, रोटी-पानी का कुछ प्रबन्ध न हो सकेगा। बैलों को चारा और पानी भी न मिलेगा। वह सब कर और संध्या-गायत्री से निवृत्त होकर उन लोगों को खाना खिलाऊँगी। तब स्वयं भोजन करके कुछ पढ़ूँ-लिखूँगी।" अरुणिमा ने यह कह कर जाने का विचार प्रकट किया। उसने पंडितजी का पैर छुआ और बलजोर चाचा की ओर पैर छूने को वह ज्योंही झुकी त्योंही उन्होंने उसे हाथों का बल देकर उठाया और आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटी, तुम फूलो-फलो।" पुरोहितजी एकटक यह सब कृत्य देख रहे थे। उनका मन उनकी भर्त्सना कर रहा था। अरुणिमा चली गई, मगर उसकी प्रति-मूर्ति उनके सामने वहीं खड़ी प्रतीत होती थी। जिधर देखते, वह उधर ही दिखाई देती थी। उन्होंने बलजोर से कहा—

"बचाओ मुझे, अरुणिमा के शाप और प्रताड़न से उसका सौजन्य मुझे भूत बना दिखाई पड़ता है। जब तक मैं उस दया-मूर्ति देवी से क्षमा-याचना न कर लूँगा, रात को वह स्वप्न में डरायेगी। वह स्वयं नहीं, पर उसकी ओर से ईश्वरीय माया मुझे चैन न लेने देगी। चलो चलें,

उस दयामयी देवी का दर्शन करें और उसके अधिष्ठाता माता-पिता का भी।"

बलजोर ने कहा—"चलिए, सुबह का भूला अगर शाम को घर आ जावे तो भूला नहीं कहाता।"

दोनों अरुणिमा के घर की ओर चले। आदि गुरु और चाचा बलजोर को आते देख अरुणिमा बड़े विस्मय में पड़ी। उसने सोचा—क्या मुझ से बात-चीत में कुछ त्रुटि तो नहीं हुई? वह आगे बढ़ी। उमानाथ भी स्वागत करने उनकी ओर बढ़े। तब तक सुखरानी उनके बैठने और जलपान का प्रबन्ध कर चुकी थी। सब लोग बैठ गये। अरुणिमा कुएँ पर पानी लेने गई।

पुरोहितजी ने सहमते हुये आगे बढ़कर कहा—"दया की देवी, मुझे पहले क्षमा कर दो तब यह सब शिष्टाचार करना।" सुखरानी और उमानाथ दोनों अचम्भे में पड़ गये। अरुणिमा अवाक् रह गई।

बलजोर ने तब सारा समाचार कह सुनाया। अरुणिमा दौड़ी-दौड़ी आई और पुरोहितजी के चरणों पर गिर पड़ी। पुरोहितजी से उसने कहा—"मुझे आप क्षमा करें। मेरे कारण आपको इस जाड़े की शाम में इतना कष्ट हुआ उसके लिये मैं आपसे करबद्ध क्षमाप्रार्थी हूँ।"

सुखरानी और उमानाथ भी अरुणिमा की ओर से क्षमा-याचना में सम्मिलित हुए। काफ़ी आव-भगत के बाद पुरोहित और बलजोर ने वहाँ

से प्रस्थान किया। रास्ते में इस कुटुम्ब की सराहना होती गई। और दोनों दम की दम में अपने घर पहुँच गये।

इधर अरुणिमा ने अपने नित्य-कर्म से निवृत्त हो माता-पिता को भोजन कराने के उपरान्त स्वयं खाना खाया। अपने शयन-गृह में ज्यों-ही उसने कदम रखा त्योंही एक अघटित घटना घटी। उसका कलेजा धड़कने लगा। बात बहुत छोटी थी, किन्तु उसका सम्बन्ध किसी बड़ी घटना से हो सकता था। वह किसी बड़े काण्ड की भूमिका बन सकता था। उसका चित्त अचानक न जाने क्यों ऐसा बनने लगा, जैसे कोई अपना परम प्यारा अपने से सर्वदा के लिए छूट रहा हो। उसका हृदय रह-रह कर उफान लेने लगा, कभी वह उबलता, कभी पेंदी में बैठ जाता। नींद हराम होने लगी। चित्त बहलाने के लिए गीता की पुस्तक हाथ में लेकर सिरहाने लैम्प रख कर पढ़ने लगी तो प्रतीत हुआ मानो दिल कह रहा है—हमें परेशान मत करो, विश्राम लेने दो। वह किताब अलग रख कर चारपाई पर करवटें बदलने लगी। रात पहाड़ जैसी लगने लगी। यही परिचित घर आज क्यों भयावना लग रहा है? उसका मन आज क्यों व्यग्र हो उठा है? लक्षणों से अब साफ ज्ञात होने लगा कि किसी अमंगल की सूचना ही उसे नाना प्रकार से हो रही है। इस प्रकार सोचते-विचारते आधी रात हो गये उसे नींद आ गई।

———

चौथा परिच्छेद

अखिलेश का आरम्भिक जीवन बहुत सादगी से बीता था। उसे ऐशो-आराम का विद्यार्थी जीवन भला न लगता था। वह पुरानी परिपाटी का सरल छात्र था। जीवन में वह तड़क-भड़क को स्थान देने वाला व्यक्ति न था। अभी किशोरावस्था में पदार्पण करने के साथ ही उसने विद्यालय में पाँव रखा। लोग कहते हैं कि "तुख्म तासीर सोहबते असर।" इस बात को वह उपेक्षा की दृष्टि से देखता और कहता था कि मनुष्य का जीवन उसी के हाथ में है। वह कच्चे घड़े जैसा है, जैसा चाहो बना लो।

परन्तु इसके विपरीत चिन्तामणि एक उच्च कुल के वैभवयुक्त गृह में पला, बाल्यकाल में पान जैसा फेरा विद्यार्थी था। उसे अब रह-रह कर यहाँ की प्रत्येक वस्तु उत्तेजित करती। वह इसे छिपाने की हजार चेष्टा करता, किन्तु वह अखिलेश से आँख बचा कर कैसे छिप सकता था? "मेरी तबीयत तो हाई स्कूल से इस बन्दी-गृह विश्वविद्यालय में आकर नहीं लगती।" चिन्तामणि ने एक दिन अखिलेश से कह ही तो दिया।

अखिलेश को इस बात का पता चल गया था कि चिन्ता और कामिनि की इसके पहले से ही स्कूली दोस्ती है। वह समझता था कि समय आने पर दोनों सँभल जायँगे लेकिन उसका यह विचार गलत ठहरा।

वह पछताता कि एक भले घर का लड़का बिगड़ रहा है, मिट्टी में मिल रहा है। लेकिन इसमें उसका क्या बस। कहना-सुनना और समझाना-बुझाना यही अख्तियार में था और सुमार्ग पर लाने का यही साधन भी था। इतना होते हुये भी वह प्रथम श्रेणी का तो नहीं, हाँ, द्वितीय श्रेणी का छात्र अवश्य था। कामिनी भी यहीं के एक स्थानीय रईस की लड़की थी। उसके बाप सराफे के एक धनी व्यापारी थे। वह भी हाथों हाथ फेरी गई, बीसवीं शताब्दी की सभ्यता की जीती जागती मूर्त्ति थी। गोल चेहरा, आँखें बड़ी मझोले कद की। वह पाश्चात्य सभ्यता की पूरी पुजारिन थी। उसकी अब तक की शिक्षा स्कूल में पढ़ते हुये भी 'प्राइवेट ट्यूटरों' की निगरानी में घर पर भी हुई थी। 'पिता की इकलौती सन्तानें बहुत कम योग्य निकला करती हैं'—इसी उक्ति को वह और पुष्ट कर रही थी। पहले वह रोज़ एक बन्द फिटन में घर से आती थी किन्तु जब से उसका साक्षात्कार चिन्ता से हुआ—इसकी चिन्ता उसे और उसकी चिन्ता इसे थी। वह भी होस्टल ही में रहने लगी। अखिलेश को बड़ा विस्मय और आश्चर्य इस बात का होता था कि कोई कैसे पराई बहू-बेटियों पर आँख उठाता है। अखिलेश ने अब प्रगट रूप से चिन्ता से कहा—

"आपको न तो सुख की कमी है, न आराम की। मन-बहलाव के लिए और ज्ञानोपार्जन की प्रवृत्ति ने ही आपको यहाँ तक ले आने का साहस किया है। अगर दिल नहीं जमता तो इसका तो स्वाभाविक कारण प्रत्यक्ष है। यदि हमारी तरह निर्धनता की गोद में आपका लालन-

पालन हुआ होता अपमान और भर्त्सना की ठेस लगी होती तो सम्भव था कि दिल यहाँ लगता। हाँ, एक चीज़ की कमी ज़रूर थी; वह यहाँ के पाँच-छः साल के जीवन में आपको मिल ही गई।"

यह सुनना था कि चिन्ता के पैरों तले की ज़मीन खिसक गई। अब रह-रह कर कामिनी की याद उसे और आने लगी, लेकिन दिल कड़ा करके चिन्तामणि ने बीच ही में रोक कर कहा—"अखिलेश, तुम में यह किसी को बनाने का गुण कहाँ से आया—यह कला आपने कहाँ से अपनाई? यह सब बात नहीं, जिस रत्न की खोज में मैं यहाँ आया हूँ वह तो मुझे यहाँ की यात्रा करते ही मिल गया। तुम्हारी आन्तरिक भावनाओं की छाया से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह उस ओर ले जाने के लिये मार्ग दिखा रही है। जिधर जाकर मैं गरीबों और असहायों की कुछ सेवा कर सकूँगा। तुम देखते नहीं हो, विश्वविद्यालय की विशालकाय इमारतें हमें खाने दौड़ रही हैं। क्या हम इसमें बैठ कर लैबोरेटरी के शीशों को तोड़-जोड़ कर किसी टूटे दिल को सँभाल सकेंगे? हमारा गरीब भारत इन अट्टालिकाओं और नगरों में नहीं है, वह तो गाँवों की झोपड़ियों में और दरिद्रनारायणों के भूखे पेटों के अन्दर है। जहाँ से विकराल आग की लपटें निकल कर मालूम होता है, पूँजीपतियों का क्षण भर में सर्वस्व स्वाहा कर डालने का भीषण षड्यंत्र कर रही हैं। अठखेलियाँ करती हुई ऐसा करने के लिए सन्नद्ध हो रही हैं। तुम कहते हो, धनी-मानी सज्जनों की उदारता के फलस्वरूप विद्या की राजधानी बनती है। मैं कहता हूँ कि यह अप्रत्यक्ष रूप से तसवीर का पृष्ठ-भाग

है। मुख-पृष्ठ उन्हीं नर-कंकाल—अस्थि-पंजरावशेष का यहाँ विद्यमान है जिनका पसीना ही नहीं वरन् रुधिर इन ईंटो में गारे और चूने-सुर्खी की जगह लगा है। क्या मेरी आँखें अंधी हैं, क्या मैं नहीं देख रहा हूँ? दिन-दहाड़े सभ्यता की लूट मची हुई है। मुझे यह बिस्कुट और पाव रोटी भी फीकी लगती है। वहाँ सूखे, बिना नमक के साग में छप्पन प्रकार के भोजन का स्वाद आता है। वे कमाएँ धूप-शीत में और वर्षा का दुःख वे झेलें, और मुझ जैसों को क्या अधिकार कि तोंद फुलाएँ? उनका कमाया धन, उनकी अर्जित सम्पत्ति उदरस्थ कर जायें और डकार भी न लें!"

अखिलेश ने कहा—"आज कहाँ की फ़िलासफ़ी लेकर बैठे हो! मैं घर पत्र लिखने वाला था, वह भी इस झमेले में न लिखा जा सका। रात से ही मेरी तबीयत कुछ उद्विग्न-सी होती जाती है। बहिन अरुणिमा रह-रह कर याद आ रही है, कभी पिता की तरफ़ ध्यान जाता है तो कभी माता अपनी ओर खींचती दिखलाई पड़ती है।"

'तो फिर टेलीग्राम दे दिया जावे।" चिन्तामणि ने कहा।

"नहीं, चिट्ठी भेजना ही ठीक होगा। एक टेलीग्राम में न जाने कितने गरीबों की चिट्ठियाँ लिखी और भेजी जा सकती हैं।" अखिलेश ने फिर व्यंगात्मक तीर छोड़ा।

चिन्तामणि मन मसोस कर रह गया। "खैर, चिट्ठी लिख दीजिये। मेरा भी सबसे सादर यथायोग्य लिख दीजियेगा।"

अखिलेश बोला—"मैं लिखे लेता हूँ, उसी पत्र पर जो आपकी इच्छा हो लिख लीजिएगा और लिफ़ाफे में बन्द करके डाक में छोड़ दीजियेगा।"

अब तो चिन्तामणि को माँगी मुराद मिल गई। यही तो वह चाहता था। इसी के लिये तो सारी भूमिका रची गई थी।

पत्र में अपना हाल-चाल लिख चुकने पर अखिलेश ने उसका शेष काम पूर्ण करने के लिये उसे चिन्तामणि के हवाले किया। चिन्तामणि ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि अखिलेश ने उसमें क्या लिखा है। हाँ, अपना कुशल-क्षेम लिखने के उपरान्त अरुणिमा के प्रति दो शब्द सहानुभूति के भी लिख डाले। उसके लिए यही सन्देश था—उसका अर्थ और इति दोनों यही था। लिफ़ाफे पर उमानाथ का नाम लिख चुकने पर चिन्तामणि ने गाँव, डाकघर और जिला भी लिख डाला और साथ ही अपने नोट-बुक में भी उमानाथ की जगह पर कोई दूसरा ही नाम लिखकर अपनी जेब में रख लिया। पत्र लेटर-बक्स में डालने के बाद चिन्तामणि टेनिस खेलने क्लब में गया और उधर अखिलेश नित्य-कर्म के लिए उठा।

चिन्तामणि के क्लब में पहुँचते ही एक नवीन लहर दौड़ गई। नित्य-प्रति की तरह खेल न खेल कर कुछ बे-मन का खेल खेलने लगा—कई बार हारते-हारते बाज़ी पलटी। यूनिवर्सिटी क्लब में यह क्लब 'मणि क्लब'

कहा जाता था। चिन्ता शब्द को निकाल कर वास्तव में यह चिन्तामणि के नाम का निश्चिन्त क्लब बन गया था, वही उसका सर्वस्व था। रोज नए खिलाड़ी आते और चिन्ता के सामने सिर झुका कर विजय-पत्र लिख जाते। यह क्लब गंगा माता की गोद में सुहाने तट पर आँख उठाये खिलाड़ियों के स्वागतार्थ सदैव तत्पर रहता था। चिन्तामणि के मुँह से अचानक निकल गया, "अभी कामिनी नहीं आई?" वह कह तो गया किन्तु फिर से 'प्रसाद' कहना भूल गया। कहकर कमान से निकले तीर को वापस लौटाने का विफल प्रयत्न करने लगा। उसके प्रतिद्वन्द्वी नवल ने यह कहकर कि "विभक्ति-रहित पदों से ही 'समास' बना करता है।" मणि-क्लब एक ठहाके से गूँज उठा। सभी उपस्थित व्यक्ति इस साहित्यिक मनोविनोद की रस-धारा में डुबकी लगाने लगे। चिन्तामणि की मुखाकृति ने लज्जित आँखों से विरोध प्रकट करते हुए भी नवल का ही साथ देने का अभिनय किया। तब तक जलपान का सामान तैयार हो चुका था। क्लब के नौकर ने संकेत से चिन्तामणि को बतलाया।

चिन्तामणि ने खेल बन्द करके सहपाठियों एवं आगन्तुकों को चलने का आग्रह किया। दो-एक पुराने विचार के लोगों को छोड़कर सभी टेबुल के पास जाकर खड़े हो गये। चिन्तामणि ने उन अलग खड़े हुए सज्जनों को फलों से लदे टेबुल के पास अलग अपने हाथों कुर्सी रखकर बैठाया। तरह तरह के मिष्टान्न, केक और चाय सब कुछ तो था। 'विटामिन' वाले फल भी थे। कामिनी और चिन्ता सब का मुँह जोहते रहे। नवल फिर बोल उठा—"अगर कामिनी भी खेल में शरीक हुई होती तो कामिनी का यह 'प्रसाद' कहाँ से मिलता?"

कामिनी ने कहा—यह सब आप ही की बदौलत हैं।" एक हँसोड़ ने कहा—"बदला तो खूब लिया। वास्तव में पाश्चात्य सभ्यता के ऐसे प्रीति-भोजों से ही एक दूसरी दुनिया की रचना होती जा रही है।" उसी हँसोड़ के शब्दों में सबने अपनी हँसी का खुमार निकाला।

मित्रों के विदा हो जाने पर कामिनी ने चिन्तामणि से कहा—"अगर आपको मेरी हँसी ही करवानी थी तो यह सब क्यों किया? नवल को मैं फूटी आँखों से भी नहीं देखना चाहती किन्तु वह ज़रूर इस अवसर की ताक में रहता है और मुझे बोलना ही पड़ता है। आपकी सहानुभूति की मैं अवश्य भूखी हूँ। मगर उसके यह मानी नहीं हैं कि आप मुझे अपनी चेरी बना लें। मैं यह भी जानती हूँ कि यह स्कूल की और कालेज की दोस्ती चन्द दिनों की बहार है। सावन की हरियाली सब दिन नहीं रहती। क्या मुझे यह पता नहीं है कि आपके साथ आपके कमरे में जो नादान कंगाल अखिलेश रहता है उसकी......से आपकी अपरिचित दोस्ती नहीं है? आज ही जो पत्र आपने डाक में छोड़ा है क्या वह मुझे आपसे अलग होने की एक खतरे की घंटी नहीं है? वायुयानों से बम गिराने के बाद तो 'खतरा दूर' का भोंपू बजता है, किन्तु यहाँ 'खतरा-आया'—इसका भोंपू तो बज चुका, मगर खतरा दूर का भोंपू तो शायद ही बजे। लीजिए, यह आपकी तरफ़ से मेरी भी आखिरी—अल-विदाई पार्टी हो गई!" उठकर जाने के पहले ही चिन्ता ने उसे अपने बाहुपाश में ले अपनी ओर खींचा।

किन्तु आजकल की स्वास्थ्य वाली यूनिवर्सिटी के पीली-पीली सरसों

जैसा शरीर उसे सँभाल न पाया। परिणाम यह हुआ कि कई प्लेट फूटे, टेबुल खड़बड़ाये। नौकर 'दुर-दुर' की आवाज़ लगाता डंडा लेकर वहाँ पहुँचा। खैरियत यह हुई कि टार्च का प्रकाश कर देने से कोई गंभीर घटना न हो पाई। बिना बोले चिन्ता ने अपनी साइकिल उठाई और कामिनी ने अपनी। नौकर ने बटन दबाकर प्रकाश किया। वह भी वहाँ से यही कहता निकला कि "देखें, यह टूटे प्याले फिर कब क्लब में जुटाते हैं?"

यहाँ होस्टल में अखिलेश संध्या-पूजा एवं व्यायाम से निवृत्त होकर चिन्तामणि की राह देखता-देखता कुछ ऊँघने लगा। ऊँघते ऊँघते वह सो भी गया। नींद खुली, घड़ी में देखा तो ग्यारह बजने जा रहे हैं। अब तक चिन्ता न आया। अब इसकी चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

चिन्ता के विषय में अखिलेश यही सोचा करता कि कुलटा कामिनी इसे ले डूबेगी। बड़े घर के लड़के इसी तरह बिगड़ा करते हैं। सिद्धान्त की बातें तो पुस्तकों से छाँट कर सभी वाद-विवाद में पटु हो जाते हैं; मगर कितने उन सिद्धान्तों पर चलते हैं? यही रवैया चिन्ता ने भी अख्तियार किया है। सह-शिक्षा से बहुत से अनर्थ हो जाते हैं। ऐसे कितने भीष्म पितामह यहाँ इकट्ठे होते हैं जो आजन्म ब्रह्मचारी रह सकते हैं। यहाँ तो जवानी आरम्भ होने के पहले ही बुढ़ापा धर दबाता है। पीले-पीले मुहांसे वाले मोतीचूर के लड्डू जर्द चेहरों पर दिखलाई देते हैं। कोई पानी का सहारा लेकर कवि-सम्मेलनों में अपनी कविता का रसास्वादन कराता है, तो कोई पान की गिलौरियों को ही आधार बना

कर मैदान मारता है। हाथ में घड़ी, आँख में ऐनक, पैर में चप्पल, पतली धोती, जेब में कविताओं की कटिंग और बड़े महात्माओं की ओज भरी चन्द दलीलें। यही संक्षेप में यूनिवर्सिटी और कालेजों के नवयुवकों की पहिचान का नुसखा है। घरवाले समझते हैं, परिश्रम से यह दशा हो जाती है, लेकिन उन्हें तो भुलावे में रखकर अपना उल्लू सीधा किया जाता है। आज चिन्ता आवें तो उनसे मैं पूछूँगा—दुनिया का कौन सा उत्तरदायित्व आप सँभाल सकते हैं? अब तक तो आपने एम० ए० फ़ाइनल कर लिया होता। इसी लापरवाही से मेरे साथी बने। खैर, इसी साल सही। एम० ए० फ़ाइनल की परीक्षा में बैठना है और यहाँ क्लब में दौर चल रहा है। बस वहीं होंगे और कहीं जा नहीं सकते। वह सामने लड़खड़ाते हुये आ तो रहे हैं। साइकिल में बत्ती भी नहीं है। पुलिस वाले जाने-पहिचाने और स्टुडेण्टों को कानूनी शिकंजे में कसना ठीक नहीं समझते। गँवार और देहातियों के लिये ही उनका कानून है। आते ही धड़ाम से चारपाई पर गिरेंगे, हजारों बहाने बनाएँगे। मुझे क्या पड़ी है। लेकिन नहीं, गाँव-घर के रईस के लड़के ठहरे, इनको बिगड़ते देखकर मनुष्यता का भी कुछ तकाजा होता है। समझाऊँ-बुझाऊँ, मान जाएँ, राह रास्ते पर आ जाएँ तो ठीक ही है, नहीं तो इसका परिणाम उन्हें ही भुगतना पड़ेगा मुझे थोड़े ही।

चिन्ता ने साइकिल बाहर बरामदे में खड़ी करके भीतर आने के पहले ही कहा—"अखिलेश तुम ने अभी तक खाना नहीं खाया? मैं तो खा चुका हूँ। क्या कहूँ अपनी याद को! जाते वक्त कहना भूल गया

कि क्लब में आज प्रीति-भोज है। तुम चटपट खाना खा लो। खाना काफ़ी ठंडा हो चुका होगा। क्षमा करना, मेरे कारण तुमको कभी-कभी बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।"

"कष्ट सहने के लिए ही तो हम गरीब इस दुनिया में आये हैं। और सुख-वैभव लूटने आप जैसे अमीर शहजादे।" अखिलेश ने कह तो दिया पर मन ही मन सकुचाने लगा। यह जानकर कि चिन्ता इस वक्त होश में नहीं है उसे कुछ संतोष हुआ। उसने चिन्ता से कहा— "अच्छा सो जाओ। अब इस वक्त तो मैं खाना खाऊँगा नहीं।"

"थोड़ा सा गर्म दूध ही पी लो, जाड़े की रात बड़ी होती है, चिन्ता ने कहा।

अखिलेश ने अँगीठी पर रखा गर्म दूध उतारा और पीकर सो रहा।

उधर जब कामिनी अपने होस्टल में पहुँची, तो उसकी साइकिल फेल हो गई। हवा न रही। उसने पम्प से फिर हवा भरनी चाही, मगर पंक्चर हो जाने से वह इस काम में सफल न हो सकी। खैर, किसी तरह फाटक से अपने कमरे तक वह साइकिल घसीटते हुए पहुँची। नौकर ने आवाज़ दी, "कौन ?"

कामिनी ने बिना कुछ प्रत्युत्तर दिये ही कमरे में पैर रखा। साइकिल बाहर ही छोड़ी। एक गिलास गर्म दूध पीकर वह भी चारपाई पर पड़

रही। उसके दिल में एक प्रकार की धड़कन और उलझन-सी होने लगी। कभी वह सोचती मैंने बुरा किया जो चिन्ता को मुँह लगा कर चिढ़ाया। फिर कहती अच्छा किया, अब वह मेरा पिंड छोड़ देगा। ठीक किया। स्त्री-जाति को पुरुष के साथ अविवाहित अवस्था में इस प्रकार हिल-मिल जाना शोभा नहीं देता। लेकिन नहीं, पाश्चात्य सभ्यता के हामी हम जैसों को सभ्य और नई रोशनी वाली कह कर अपने समाज की उन्नति किया चाहते हैं। मैं बिगड़ रही हूँ इसका ख़याल मुझे आज पहली ही बार हुआ है। खैर, देखा जायेगा। अगर चिन्ता न बोला तो ठीक ही है। अगर बेहया बनकर बोला तो भी मैं न बोलने की ही चेष्टा करूँगी। अगर यह भी न हुआ तो यहाँ से अपना सम्बन्ध तोड़कर कहीं अन्यत्र चली जाऊँगी। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। किसी की बन्दी बनकर भी इस अपमान से छुटकारा पाऊँ मेरी अन्तरात्मा यही कह रही है। मेरे पिछले कारनामे धू-धू करती चिता में जल रहे हैं और मैं उन्हें देखकर प्रसन्न हो रही हूँ। दुनिया में प्रेम की अनुभूति भी क्या वस्तु है। यदि प्रेम विशुद्ध वेदी पर आहुति देने के लिए बैठा हो तो सौन्दर्य भी प्रेम का उपकरण मात्र है, किन्तु सौन्दर्योपासक किसी कुसुम को हाथ थोड़े ही लगाता है। वह तो उसकी सुवास से ही अपने मद-मत्त चित्त को आश्वासन दे लेता है। प्रेम! तू ने साक्षात्कार होते समय मेरी बुद्धि क्यों भ्रष्ट कर दी? उसका सौन्दर्य जिस पर मैं लट्टू होकर नाचने लग गई, क्या वह ईश्वरोपासना का कोई साधन था? नहीं, वह तो दुनिया को मतवाली दुनिया में बदलने वाला था, वह तो झँकोरा देने वाला पवन

था, और क्षणिक सुख का आभास मात्र था। अब चिन्ता-क्लब छूटा, मणि बुझ गई, अब मेरी आन्तरिक मणि जगमगाएगी, जिसके प्रकाश में मैं इस मायावी दुनिया को अच्छी तरह देख सकूँगी। समझ-बूझकर कदम उठाऊँगी। इसी उधेड़-बुन में चार बज गये, मुर्गों ने बाँग दी तब उसे नींद आ गई। स्वप्न में वह क्या देखती है कि—देवदूत आये और उसे उठाने का प्रयत्न करने लगे। कान में आवाज़ आई—"तू ने बुरा किया, किसी के दिल को ठेस पहुँचाना अच्छा नहीं।" क्या उसने मुझे ठेस नहीं पहुँचायी?" उत्तर मिला—"अवश्य, लेकिन क्या उसका बदला यही था?" आँख खुल गई। टेलीफोन को कान से लगाया तो सुना—"हल्लो कामिनी!" यह तो चिन्ता की आवाज़ मालूम होती है। टेलीफोन् को अलग उठा कर रख दिया। फिर वही आवाज़, नहीं मानेगा हत्यारा, उत्तर दे देना ही पड़ेगा जिससे वह इधर का रास्ता तो छोड़े। "हलो चिन्ता, अब तुम्हारी चिन्ता मुझे नहीं रही। इसका कारण तुम स्वयं हो। मैं अब उस राह से हट कर, किसी दूसरी ओर जा रही हूँ। मेरे लिए प्रयत्न न करना। मैं अपने इस बन्दी जीवन से ऊब गई हूँ। बस मेरे लिए प्रयत्न न करना। अब अन्तिम बार का नमस्कार स्वीकार करो। मैं बिस्तर बाँधे तैयार हूँ। तुम यहाँ आकर मुझे न पाओगे। इसलिए आने का कष्ट न करना, नहीं तो मुझे भी कष्ट होगा। जो कुछ व्यवहार हमारा-तुम्हारा था, उसे यहाँ की दुनिया अच्छी तरह जान चुकी है, मगर फिर भी मैं यही कहूँगी कि हम दोनों अपनी ज़बान से उसकी पुनरावृत्ति न करेंगे, यही अन्तिम विनय है। लो, मैं चली!"

चिन्ता के हाथों से टेलीफोन गिर गया। वह निस्तेज-सा हो गया।

अखिलेश ने उसे सँभाला। वह भी सारी बातें सुन रहा था। इसीलिए उसने कहना आरम्भ किया—"वह तो गई, नेक राह पर अपने मन से और अब तुम उसके मन से अच्छे मार्ग पर चलो। लो, यह पत्र तुम्हारे पिता का आया है। उन्होंने तुम्हारे इंगलैंड जाने के लिए पास-पोर्ट भी मँगा लिया है। कल ही वे आवेंगे, तुम सचेष्ट होकर अब से ही अपना भविष्य सुधारने का प्रयत्न करो।"

चिन्ता ने दुःख भरी आँखों से अखिलेश को देखा और कहा—"क्या कहा, पिताजी आवेंगे और मुझे इंगलैंड भेजने के लिए! खैर, एम० ए० की फाइनल परीक्षा इस साल तो देने का विचार ही नहीं है। वहीं इसकी भी परीक्षा दे लूँगा। इसके पहले कि मैं वहाँ जाऊँ तुम-से सगे और सच्चे मित्र का गुण-गान कर लूँ। तुमने मुझे बहुत सँभाला, बड़े-बड़े गड्ढों से निकाला। तुम्हारा उपकार आजीवन न भूलूँगा। यह शरीर जहाँ रहेगा वहाँ से ही यथासाध्य तुम्हें सुखी देखने का प्रयत्न करेगा।"

अखिलेश ने डबडबाई आँखों से आँसू पोछ कर अपनी रुखाइयों के लिए क्षमा माँगी।

चिन्ता और कामिनी की मित्रता की बात यूनिवर्सिटी में फैल गई थी, जिस ओर दोनों निकलते लोगों की उँगलियाँ उठतीं; रास्ता चलना मोहाल था। भगवान न करे कि कोई स्कूल और कालेज में सबकी आँखों में गड़ने लगे। जिसके लिए ऐसा हो जाता है उसका पढ़ना-लिखना

तो जाता ही है पर उसका सामाजिक जीवन भी दुःखमय और किरकिरा हो जाता है। चिन्ता तो धनी घर का लड़का था, कामिनी भी उसी तरह की थी। यूनिवर्सिटी छोड़ कर भी दोनों का जीवन व्यतीत हो सकता था और आनन्द से कुछ नौकरी और जीवकोपार्जन की चाह से दोनों नहीं पढ़ रहे थे। ज्ञान-वृद्धि भी उद्देश्य नहीं था, केवल मन बहलाव और धन की शोभा ही इनके यूनिवर्सिटी-प्रवेश का महान् उद्देश्य था। चिन्ता और कामिनी का रंग-ढंग देख कर लोग यही समझते थे कि इनकी मित्रता नहीं टूट सकती, मगर स्कूल और कालेज की दोस्ती में कहाँ तक तत्व रहा करता है इसका भी पता लोगों को था। अचानक कामिनी के गायब होने और चिन्ता के विलायत जाने पर सब को अच्छी तरह ज्ञात ही हो गया। दैव-योग से चिन्ता तो अच्छे मार्ग पर गया, मगर कामिनी का क्या होगा ? यह तो समय की धारा ही बतावेगी। लेकिन हाँ, यदि उसने श्मशान-वैराग्य के कारण ऐसा नहीं किया है जैसा कि अनुमान लगाया जा रहा है तो फिर वह एक दिन स्वर्ण की तरह समाज के बीच खरी उतरेगी, समाज उसे आदर देगा और चिन्ता को भी आगे चल कर इसकी सफ़ाई देनी होगी।

इस प्रकार दोनों ने अपना भविष्य बहते पानी में डाल दिया—न जाने वह किधर बहाकर इन्हें ले जावेगा। इसकी चिन्ता यूनिवर्सिटी में सब को थी विशेषकर अखिलेश को। वह रात-दिन चिन्ता और कामिनी की हित-चिंतना बराबर किया करता था। ईश्वर से मनाता कि दोनों का चरित्र समाज के लिए आदर्श और खरा उतरे।

पाँचवाँ परिच्छेद

अरुणिमा भाई अखिलेश का समाचार इन दिनों न पाकर कुछ खिन्न-सी रहा करती थी। वह इसे छिपाने का लाख प्रयत्न करती, पर छिपा न पाती थी। लोग इसे देखकर आपस में एक दूसरे से पूछ बैठते थे कि क्या कारण है, इसके उदास रहने का ?

कोई कहता—वही बिहारीमल का लड़का चिन्ता—इसकी चिन्ता का कारण है। कोई कहता—जब तक वह यहाँ था, और जब-जब वह यहाँ आता है; तब-तब वह उससे खुले दिल से बातें करती थी। मगर शहरियों का क्या ठिकाना—कहीं उसका दिल दूसरी जगह फँस गया हो। अरुणिमा जैसी लाखों उसका सिजदा करने के लिए तैयार होंगी। है वह भी सुन्दर और छरहरे बदन का छोकरा! उसकी मधुर मुस्कान पर न जाने कितनी अरुणिमा निछावर होने को तत्पर होंगी। और तो कोई नहीं, पुरोहित सरजूप्रसादजी इसकी अधिक टोह में रहा करते थे। यद्यपि बेहयाई का बुरका डालकर माफी माँग आये थे। सब कुछ किया, मगर तब भी ईर्ष्या की आग उनके हृदय में बराबर धधकती ही जा रही थी। धधके क्यों न ? उनकी जीविका इसी पाठशाला की बदौलत चला करती थी। वेतन से अधिक इधर-उधर की आमदनी से तोंद भरती थी और ठाकुरजी का भोग भी बड़ी सज-धज से लगा करता था।

आज-कल के पुरोहितों और गुरुओं का प्रायः यही हाल हुआ करता है, जिस पत्तर में खाते हैं, उसी में छेद करते हैं। जिनकी दी दक्षिणा से पेट

भरता है, उसी की बदनामी करते नहीं अघाते। जहाँ गुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र जैसे कुल-गुरु और पूज्य थे; संसार का भला करने के लिए अपने यजमानों को बराबर उभारते और उनकी सहायता से धर्म-राज्य स्थापित किया करते थे, वहीं आज निरक्षर भट्टाचार्य गुरु और पुरोहित दान-दक्षिणा के लिए झगड़ते देखे जाते हैं। पता नहीं, समाज का क्या सारा अंग ही कुरीति-घुन के आक्रमण-क्षेत्र में आ गया है ? पुरुष-समाज तो अधिकांशतया इन्हें तिरस्कृत कर चुका है लेकिन स्त्रियों की बदौलत आज भी इनकी रोटी आनन्द से चल रही है। हज़ारो तरह के ढोंग करके अपनी प्रसिद्धि करना इसका काम हो रहा है। समाज को अब ये बहुत दिनों तक धोखा न दे सकेंगे। पशु और पक्षी भी अपना हित और अहित पहचानते हैं। अब ये अधिक दिन तक समाज की आँखों में पट्टी बाँध कर,. तेली के बैल की तरह कोल्हू में न जोत पावेंगे। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा समाज फ़क़ीर बन कर जंगलों की राह लेने की तैयारी कर रहा है। यूरोप में जब तक पोपों का राज था, समाज के ऊपर पूर्ण अधिकार था, तब तक वह इतना समृद्धिशाली न हो सका था; मगर जब उसने इन्हें समाज से दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर फेंका, दुनिया को दिखा दिया कि ईश्वर आसमान में नहीं, बल्कि पृथ्वी पर मनुष्य के साहस में रहता है। शक्ति और बल इस प्रकार अंध-विश्वास करने पर सहायक नहीं होते।

सरजूप्रसादजी ठीक इसी तरह के बीसवीं सदी के पुरोहित थे। सच बात तो यह थी कि लड़कियों की बदौलत ही उनकी पाठशाला चला करती

थी। अरुणिमा के कन्या-पाठशाला के खुल जाने से लोगों ने एक स्त्री अध्यापिका की देख-रेख में अपनी लड़कियों को शिक्षा देना उसकी अपेक्षा अधिक अच्छा समझा। क्योंकि पहले लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ा करते थे, इसलिए लोग स्त्री-शिक्षा का विरोध करते थे। कन्या-पाठशाला के खुल जाने से वैसी परिस्थिति न रही। लोग प्रसन्न थे। लेकिन यही बात पुरोहितजी को खलती थी।

अरुणिमा बीमार है, चारपाई पर पड़े कई दिन हो गये। उसके पेट में एक प्रकार का शूल उठता और कलेजे में पीड़ा होती। रह-रह कर दर्द बढ़ता जाता है। डाक्टर, वैद्य, हकीम सब ने जवाब दे दिया। उसका शरीर भी काफ़ी पीला पड़ गया और मुँह का स्वाद बिगड़ गया। सुखरानी भी सूख कर काँटा हो गई और उमानाथ तो बावले हो चले थे।

कोई कहता—पेट का आपरेशन होना चाहिए; कोई कहता—किसी नर्स अथवा दाई को बुला कर दिखाना चाहिए। गाँव-घर की औरतें कुछ और ही कहतीं। बदन का पीलापन एवं मुँह का स्वाद फीका पड़ना, यह तो किसी दूसरे ही रोग के लक्षण हैं। उनको तो पूरा विश्वास हो गया कि हो न हो दाल में कुछ काला ज़रूर है।

पुरोहित सरजूप्रसाद की तो अब पाँचों घी में थीं। उनका दिमाग सातवें आसमान पर चक्कर लगाने लगा। झटपट उमानाथ की बिरादरी एकत्र की गई और बिना कुछ समझे बूझे ही टाट-बाहर का फतवा दे दिया गया।

पुरोहित की मनचाही बात अब हो गई। और मन ही मन कहने लगी कि अब उमानाथ और सुखरानी को मेरी उसकी क्षमा-प्रार्थना का भेद मालूम होगा।

बलजोर भी उस पंचायत में शरीक था। उससे वह अनाचार न देखा गया, लेकिन बेचारा अकेला था। हिम्मत करके उसने कहा—"आप लोग अपने निश्चय पर फिर से विचार कर लीजिए। पुरोहित जी, ऐसा न हो कि आपको फिर अरुणिमा का भूत सिर पर सवार हो कर परेशान करने लगे। वाह रे, कलियुगी दुनिया! तेरा नंगा नृत्य कुतूहल ज़रूर पैदा करता है, परन्तु परिणाम उसका भयंकर हुआ करता है। कहाँ आज अरुणिमा सरीखी समाज का कोढ़—निरक्षरता—का नाश करने वाली देवी की पूजा होनी चाहिए थी, उसकी रुग्णावस्था में लोगों की सहानुभूति अपेक्षित थी; सुखरानी और उमानाथ का दवा-दारू में हाथ बँटाना चाहिए था और कहाँ आज विपद-आक्रान्त कुटुम्ब को टाट-बाहर का फ़तवा सुनाया जा रहा है! धन्य रे स्वार्थ! तू किससे क्या नहीं करा सकता! मैं तो कहता हूँ—निर्दोष अरुणिमा की कान्ति इससे और उज्ज्वल होगी, उसका मान और बढ़ेगा और वह अपनी द्विगुणित शक्ति से समाज सेविका बन कर संसार के बीच चमकेगी।"

"रहने दो सफ़ाई! यहाँ अदालत थोड़े ही लगी है! भाई-बिरादरी कोई काम देगा—कोई साथ जावेगा? यही अपना धर्म, कर्त्तव्य तथा ईमानदारी ही काम आवेगी।" पुरोहित ने ऊँचे स्वर में गरज कर कहा।

"पता चलेगा, जब यह मामला थाना-पुलिस और अदालत में पहुँच जावेगा। जब मोल-भाव होने लगेगा, तब उमानाथ, सुखरानी एवं बलजोर को पता चलेगा। मैं कहता हूँ रोगी ही सही, किन्तु क्या यह बात गलत और झूठ है कि चिन्ता—अरे वही यहाँ के जमींदार बिहारीमल का सपूत—प्रजा-हित-रक्षक, यहाँ आने पर अरुणिमा से घुल-मिलकर बातें नहीं करता था? क्या बिहारीमल को ही यहाँ की जमींदारी खरीदनी थी और उमानाथ को उनका जिलेदार होना था? क्या ये सब बातें आज के परिणाम की भूमिका-मात्र नहीं थीं? मैं तो कहता हूँ और ज़ोर देकर कहता हूँ कि मैं न तो उनकी बिरादरी का हूँ और न उनके टाट-भात और हुक्का-पानी में ही शरीक! हाँ, यह तो पुरोहिती कर्म का रिश्ता ही हमसे सब कुछ करा रहा है।"

इतना कह कर पुरोहित ने ऐसा नाक-भौंह सिकोड़ा कि देखने वालों को सचमुच उनकी आकृति से घटना के ठीक होने का आभास मिलने लगा। पुरोहित ने फिर रोनी सूरत बना कर कहा—"धर्म की नाव मत डुबाओ, इसीसे आज अकाल पड़ रहा है। बरसने वाले बादल शुष्क और नीरस होते जा रहे हैं, खड़ी खेती सूखती जा रही है, इस पर भी पाप और अनाचार करने वाले बरसाती मेढकों की तरह बढ़ते ही जा रहे हैं। अरे, अब तक तो गरीब का कोई मामला होता, तो सब दुर-दुर और हट-हट कहने लगते; मगर अमीर तिस पर जमींदार के पियादा और जिलेदार; नहीं-नहीं, सर्वेसर्वा। तो फिर उनकी ओर अगर वह दस-पाँच ब्रह्म-हत्या भी कर डालें, गऊ मार डालें, तो भी कोई निगाह नहीं उठा सकता। बिरादरी के मामले

में कैसा धनी और कैसा गरीब ! टाट, भात और बिरादरी में सब के साथ समान व्यवहार होना चाहिए, इसी से समाज की गाड़ी व्यवस्थित रूप से चलती है। इसके विपरीत मन-मानी घर जांनी होने पर अव्यवस्था उत्पन्न होकर सब का सर्वनाश कर डालती है। मुझे आप कहेंगे—आपसे क्या मतलब ? गुरु और पुरोहित इसी लिए ईश्वर के घर से आते हैं, मैं अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहा हूँ और नहीं तो फिर आपके जी में जो आये कीजिए।"

"नहीं, पुरोहित जी ! 'बदला और पेट' यह दो चीजें आपसे आज यह फतवा दिलवा कर अनर्थ करा रही हैं।" बलजोर ने फिर कहा—"मैं तो साफ़ तौर पर लोगों को बतला देना चाहता हूँ कि चन्द्रमा के कलंक की बात भले ही सत्य और सही निकल जावे, सूर्य-भगवान प्रकाश की जगह अन्धकार ले ले, कुमुदिनी चन्द्र को देख कर एवं सरोज भानु को पाकर भले ही विकसित न हों; किन्तु अरुणिमा प्रातःकालीन जैसी ऊषा होकर फिर जगमगाएगी।"

पुरोहित ने कहा—"बहुत हो चुकी वकालत ! मेहनताना अब काफी मिल जावेगा। सुखरानी जी भर कर तुम्हें सराहेगी; उमानाथ लगान का खाता बेवाक कर देंगे।"

बलजोर ने कहा—"अगर ज्यादा बकबक लगाओगे, तो ब्रह्महत्या का दोष लेने में भी हम संकोच न करेंगे।"

लोगों ने कहा—"हँ, हँ, यह क्या कहा ? पुरोहित जी, चलिए बात-बात में बतंगड़ न हो जावे: हम लोग अपना काम कर रहे हैं और बलजोर अपना करें।"

बलजोर को इतना गुस्सा चढ़ा था कि अगर लोग उसे पकड़ न लेते, तो वह पुरोहित का लोहू जरूर चूस लेता। इस हट्टे-कट्टे विशाल शरीर के पँचहत्थे जवान की काली-कलूटी सूरत ने पुरोहित के प्राण-पखेरू उड़ा दिये। खिसियानी बिल्ली की तरह दांत निकाले खड़े रहे। उसकी भयावनी सूरत रह-रह कर पुरोहित को निहारती, वह कदम उठाता मगर बेबसी और लाचारी से बढ़ा न पाता था।

इधर तो यह हो रहा था और उधर उमानाथ और सुखरानी रोनी सूरत बनाये अरुणिमा की दवा-दारू में निमग्न थे; बिहारीमल भी इस वक्त छावनी में बनारस से आ गये थे। पुरोहित की सारी कार्रवाई उन्हें मालूम हो चुकी थी। वह इसकी खबर पुलिस को करने वाले ही थे कि उमानाथ ने वहाँ पहुँच कर उहें इस काम से रोका। और कहा—

"सेठ जी, जो जैसा करता है; उसे वैसा फल अवश्य मिलता है। संसार का इतिहास, वेद-शास्त्र और किंवदन्तियाँ सभी पुकार-पुकार कर इस बात की गवाही दे रही हैं। अरुणिमा अगर सची और निष्कलंक है तो वह पुरोहित के कीचड़ उछालने से नहीं घबरायेगी। उसके सुमन में धब्बा नहीं लगेगा। चिन्ता यदि सचमुच निरपराध है तो उसे कोई अपराधी नहीं बना सकता यह ध्रुव सत्य है।"

बिहारीमल अपने मन ही मन पुरोहित और उमानाथ की तुलना करने लगे। और यही निश्चय किया—"हने को हनै; दोष-पाप न गनै।' इतने में बलज़ोर ने पहुँच कर बिहारीमल के क्रोध की आग में अपनी बातों से घी की आहुति डाल कर उसे प्रज्वलित करना चाहा।

उमानाथ ने पहले बलजोर की भरपेट सराहना की, फिर समझा कर कहने लगा—"भाई, इतना जल्द आपे से बाहर न होना चाहिए। हो सकता है कि उनके फतवे से ही अरुणिमा की बीमारी कुछ घटे। यह मैं कैसे कह सकता हूँ कि अरुणिमा सर्वथा निर्दोषी है। यह तो दुनिया है चलने दो, समय स्वयं इन बातों का निर्णय करेगा। हमारा और हमारे विपक्षियों का मामला सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही निपटाएगा।"

"नहीं, इसके पहले मेरे हाथ का घूँसा इसका फैसला करेगा।" बलजोर ने दाँत पीस कर कहा।

उमानाथ ने कहा—"पाशविक व्यवहारों से तुम किसी के हृदय पर अधिकार नहीं कर सकते। देखते नहीं हो आज बिहारीमल का स्थान हर मर्द और औरतों के दिलों में है, मगर उन राजा-नवाबों की जमींदारी की तरफ़ निगाह दौड़ाओ, तो तुम्हें पता चलेगा कि उनकी रिआया के दिलों में उनके प्रति कैसी दुर्भावना प्रगट हो गई है। अवसर पाते ही वह भीषण ज्वालामुखी का विस्फोट होगा कि कोई मानवी एवं पाशविक शक्ति उसे रोकने में समर्थ न हो सकेगी। मैं तुम्हें आगाह

किये देता हूँ कि दुनिया में तलवार का राज्य और सैनिक शासन का आधिपत्य चंद रोज़ा हुआ करता है, स्थायी नहीं। तुम्हें शान्ति और धैर्य से काम लेने की आवश्यकता है। तुम भी पुरोहिती-प्रवृत्ति न अख्तियार करो। तुम्हें दैवी-शक्ति का सहारा लेकर आसुरी शक्तियों के संहार करने के लिए तत्पर होना है। कल जब देश और राष्ट्र का सवाल आएगा, एक महा प्रबल राज-शक्ति के मद में जब हम पिसे जाने लगेंगे, तो दूध की तरह उफान लेने वाले मनुष्य उस परीक्षा में शीतल जल-बिन्दु बन कर ही पार पा सकेंगे।"

बलजोर ने कहा—"उमानाथ ठीक कहते हो, यह तो तुम्हारा ही कलेजा है कि जो सब सुनेगा और सहेगा। अरुणिमा वह निर्दोष बच्ची, आज पुरोहित की दुर्भाग्य का शिकार हो रही है; यह सब समय करा रहा है और कोई नहीं।"

अरुणिमा की पाठशाला में जाकर पहले डाकिये ने उसे आवाज़ दी मगर उसे वहाँ न पाकर वह सीधे उमानाथ के घर की तरफ़ बढ़ा। लिफ़ाफ़ा एक लड़के के हाथों घर के अन्दर भेजवाकर वह आगे बढ़ा। सुखरानी ने कहा—"बेटी, देखो तो यह किस की चिट्ठी आई है ?"

अरुणिमा की चित्त-वृत्ति इस समय कुछ स्वस्थ थी, दर्द भी कुछ कम हो गया था। वह तकिए के सहारे उठ बैठी। लिफ़ाफ़ा फाड़ा। उसमें से दो पत्र मिले। एक पर अखिलेश और दूसरे पर चिन्ता के हस्ताक्षर देखकर चित्त में ढाढ़स हुआ। पढ़कर उसने दोनों पत्रों को

छाती से लगाया। इन पत्रों ने जड़ी-बूटी के पत्तों का-सा चमत्कार दिखाया। जिस पत्र के कोने पर चिन्ता लिखा हुआ था उसे पढ़ने लगी— पिताजी ने पासपोर्ट भेज दिया है। वह डाक से मेरे पास आता ही होगा। रुपयों का भी प्रबन्ध हो चुका है। मैं कल या परसों की एक्सप्रेस से अथवा बाम्बेमेल से बम्बई के लिए रवाना हो जाऊँगा। वहाँ से इंगलैण्ड जाना है। इसे पढ़ कर अरुणिमा विह्वल हो गई। वह मन में कहने लगी, स्वस्थ होती तो विदाई देने जाती। उन्हें समझाती, अपनी भारतीय संस्कृति वहाँ न छोड़ना। मगर क्या करूँ विवश हूँ। पिता बिहारीमल को ही समझाती, क्या यहाँ विद्या-प्राप्ति में कोई बड़ी अड़चन है जो आप उन्हें दूर देश विलायत भेजकर विलायती बनाना चाहते हैं? हमारी रग-रग में गुलामी कूट कूटकर अपना घर कर गई है, तिस पर भी हम उसके पीछे बावले बने घूम रहे हैं। मातृ-भाषा और स्वदेश की दुर्गति यही भावनाएँ करा रही हैं।

सुखरानी ने पूछा—"दोनों बच्चे मजे में तो हैं न?"

"हाँ, बहुत मजे में। अब एक देश में और दूसरा विदेश में, दो प्रकार से मातृ-भूमि की सेवा में तत्पर होनेवाले हैं। एक सरकारी राज-शृंखला की कड़ी का काम देगा और दूसरा देश-भक्ति की जंजीरों में कस कर बँधेगा। यही भविष्य में होगा।" अरुणिमा ने अपनी माँ से कहा।

"तुम्हारी ऊट-पटांग बातों का कुछ ओर-छोर मालूम नहीं देता, सीधे से क्यों नहीं कहती कि चिन्ता विलायत जा रही है और अखिलेश बनारस

में ही रहेगा। ठीक है, बिहारीमल को ईश्वर ने सब लायक बनाया है, धन-दौलत की यही शोभा है कि सन्तानों को उचित मार्ग पर लाने के लिए देश-विदेश हर जगह जाने और ज्ञानार्जन के लिए सुविधा मिले। हाँ, डर यही है कि वह कहीं पूरा साहब न हो जाय।" मुखरानी ने ज़रा चिन्तित होकर कहा।

उमानाथ ने घर पहुँचते ही अरुणिमा की तबीयत अब कुछ सुधरी देखी। उन्होंने भी चिन्ता के विलायत जाने का सन्देश दिया—"विद्योपार्जन के निमित्त जाना श्रेयस्कर अवश्य है; किन्तु संस्कृति का ऐसा तक़ाज़ा नहीं है। मगर अब तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ सारे संसार को एकसूत्र में नत्थी किये हुये हैं; वर्तमान आवागमन के साधनों ने दूरी का सवाल ही हल कर दिया। सब एक दूसरे के सम्पर्क में हैं किन्तु मनुष्यता के नाते एक दूसरे से अत्यन्त दूर। खैर, तुम विश्राम करो। सुना है कि पास ही नदी-तट पर एक पहुँची हुई संन्यासिनी आई हैं; उन्हीं को लिवा लाकर तुम्हें कल दिखाना है। वह दवा-दारू भी सुना है, अच्छा करती हैं।"

छठा परिच्छेद

रतनपुरा गाँव के पास ही कुछ दिनों से एक क्षीणकाय युवती संन्यासिनी कहीं से आ गई हैं। आस-पास के गाँव के लोगों की सुबह-शाम वहाँ काफ़ी भीड़ लगी रहती है। वह स्थान जहाँ पुराने जीर्ण-शीर्ण मन्दिर

में चील, कौए एवं चमगादड़ बसेरा लिया करते थे, हिंसक जङ्गली जन्तुओं का वह घर-सा बना था, गाँव से मन्दिर तक एक झुरमुट के अन्दर से होकर पगडंडी का यत्र-तत्र पता भी लगता था। ध्यान-पूर्वक देखने से यह मालूम होता था कि प्राचीन काल में किसी सिद्ध की जगह यह ज़रूर रही होगी। संन्यासिनी यहाँ कहाँ से और क्योंकर आ गई, लोग लाख कोशिश करते, मगर कहीं से सुराग न मिलता था। इनकी पूजा-अर्चना का विधान ही कुछ दूसरा रहता। किसी कार्य को सार्वजनिक रूप देना, समाज की भलाई के विचार से श्रेयस्कर हुआ करता है; समाज की दुर्गति का प्रधान कारण यही है कि उसका विस्तृत रूप संकुचित-सा होता जा रहा है; उसका क्षेत्र जितना ही संकुचित होगा, उतना ही उसमें विकार अधिक केन्द्रीभूत होगा। दोषयुक्त समाज किसी प्रकार उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि उदार समाज में हर व्यक्ति उचित स्थान पाता है और उसका विकास बराबर हुआ जाता है। मगर बन्धनों से जकड़ा समाज स्वयं अपने हाथ पैर न खोल कर मृत-प्राय हो जाता है। संन्यासिनी समाज की इस कुंठित शक्ति को उभाड़ना चाहती थीं; इसीलिये उन्होंने एक ऐसा मार्ग निकाला कि जिस पर बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के सभी चल कर अपना मनोरथ पूर्ण कर सकते थे। जिस समाज का द्वार बिना रोक-टोक सब के लिए निर्बाध रूप से खुला रहता है, वह जल्द ही उन्नत होकर संसार में प्रख्यात हो जाता है और दूसरे समाज उसका अनुकरण करके अपना मार्ग भी प्रशस्त बना लिया करते हैं।

प्रातः और सायं सभी आस पास के धार्मिक पुरुष और कुछ मनोविनो-

दार्थी एक भारी संख्या में वहाँ एकत्र होते थे। सर्वप्रथम हवन होता, इसके बाद सार्वजनिक प्रार्थना होती। संन्यासिनी पहले स्वयं ऊँचे स्वर में निम्न पद गातीं और पीछे उसे सब दोहराते जाते थे। अन्त में भारत-माता की जय के नारे लगाये जाते थे।

—पद—

हरिजन-जन की प्रीति-रीति मन में पहिचाने ॥टेक०॥
कोई किसी का है नहीं जग में, मोह-फाँस अरुझाने ॥हरि०॥
पीर पराई में जो लागे, भक्त उसी को जाने ॥हरि०॥
पूजा उसकी हर थल होवे, देव सरिस सब माने ॥हरि०॥
भीर परे पर पैदल आते, कहते सकल सयाने ॥हरि०॥
सुमिरन कर लो उस ईश्वर का, जिसकी हो सन्ताने ॥हरि०॥

धीरे-धीरे संन्यासिनी की प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी। कुछ जड़ी बूटियों से वे दवाई भी करती थीं। प्रार्थना के बाद प्रातः रोगियों का जमघट लग जाता था। यहाँ तो जितने वैद्य और हकीम बढ़ते जाते हैं; उससे कहीं अधिक रोगी। ऐसा विचार करते हुए उमानाथ भी अरुणिमा की हालत संन्यासिनी से कहने के लिए वहाँ पहुँचे।

उन्होंने देखा कि कुटी जगमगा रही है। गेरुआँ वस्त्र धारण किये संन्यासिनी चरखा चलाती जाती और समीपस्थ लोगों से कुछ वार्तालाप भी करती जाती हैं। संन्यासिनी ने एक सरल प्रकृति और सहृदय व्यक्ति को प्रणाम करते देखा। देख कर वह मन ही मन कहने लगीं कि मेरा दिल इनकी ओर न जाने क्यों अनायास ही खिचता जा रहा है; यह तो

अपने पिता सरीखे मालूम हो रहे हैं। उसने उठ कर उमानाथ का स्वागत किया और उचित स्थान पर बैठाया।

उमानाथ अपनी राम-कहानी सुनाना प्रारम्भ करें, इसके पहले संन्यासिनी का रूप-रंग, उनका ओज और चमत्कार देखकर उमानाथ मग्न हो गये। उनका जी चाहने लगा इस रमणीक स्थान में रह कर ईश्वर-भजन करने का। और सोचा—इन्हीं का जीवन संसार में अलग-निराला सुखमय व्यतीत हो रहा है। ईश्वर-भजन और पूजा-पाठ से काम और दुनियावी झंझटों से कोई सम्बन्ध और सरोकार नहीं। देखने से तो पता नहीं चलता था लेकिन उमानाथ ने अनुभव से जान लिया कि संन्यासिनी किसी मानसिक पीड़ा से व्यग्र रहा करती हैं, जो उनकी प्रत्येक क्रिया से प्रत्यक्ष हुआ जाता था।

उमानाथ ने पूछा—"देवि, क्या इस अवस्था में संन्यासिनी होने का कोई विशेष कारण उपस्थित हुआ था?"

संन्यासिनी ने कहा—"यह बात तो समय के आधीन है; मैं अपने आप इसका कारण भी नहीं बता सकती। क्योंकि इसका पता मुझे स्वयं नहीं है। समय ही इसका कारण बतावेगा। मुझसे इस बाने के धारण करने का कारण मेरा हृदय स्वयं पूछा करता है। उसे भी मैं यही बहाना करके टाल दिया करती हूँ। पता नहीं, यह बाना मुझे किस घाट लगाएगा। जहाँ तक बन पड़ता है जाति और समाज की सेवा

करती हूँ। और इसे ही मुख्य पूजा-पाठ का अंग समझती और मानती हूँ। मेरे जीवन का उपांग यही है। केवल संन्यासिनी की तरह गेरुआँ वस्त्र धारण करके इधर-उधर जाना और घूमना ही ध्येय नहीं है। शिक्षा और दीक्षा स्वयं प्राप्त करूँ और अपने अनुभवों से देश और जाति को लाभ पहुँचाऊँ, यही मेरा महान् उद्देश्य है। आप बुजुर्ग आदमी ठहरे, इसीलिए थोड़ा सा इस सम्बन्ध में कह दिया। दूसरों के पूछने पर मैं बिना किसी प्रकार का उत्तर दिये ही उन्हें टाल दिया करती हूँ। बात यह है कि ऐसी बातों से माया-मोह के जाल में फँस जाने का अँदेशा रहता है। मैं सब सुन चुकी हूँ और सब कुछ जानती हूँ। फतवा हो चुका। अरुणिमा को दोषी करार दिया गया। मैं सब सुन और जान चुकी हूँ। उमानाथजी कुछ आपके कहने की ज़रूरत नहीं। मैं कोई न कोई बहाना ले कर अब तक आई होती किन्तु उसी के सम्बन्ध में मेरा हृदय अब तक गम्भीर गवेषणा करता रहा है। आज यह दिन आया कि मैं आपके साथ चल कर बहिन अरुणिमा की व्यथा दूर करूँ और दुःखी परिवार के साथ समवेदना और सहानुभूति दिखाऊँ और अब तक किये गये कार्यों का प्रायश्चित्त एक अबला की लोक-लज्जा बचाकर, भाई-बिरादरी का भ्रम-निवारण कर गई मर्यादा को फिर से प्राण-प्रतिष्ठा देना है।"

संन्यासिनी ने इतना कह कर हैंड-बेग उठाया और उमानाथ से कहा—"चलिए।" वह लम्बे कदमों से आगे-आगे चली जा रही थी। उमानाथ ने गति-विधि से जानकर पूछा—"मालूम होता है, संन्यासिनीजी का सब कुछ जाना-पहिचाना है?"

संन्यासिनी ने हँस कर कहा—"जो भी समझ लीजिए।"

दो ही चार मिनट का मार्ग था। जल्दी से तै हो गया। सुखरानी कभी बाहर दौड़ कर जाती और फिर भीतर आकर अरुणिमा को पंखा झलने लगती। वह अन्यमनस्क-सी बैठी थी कि तब तक उमानाथ संन्यासिनीजी को साथ लिये आ पहुँचे। अरुणिमा ने उन्हें देखा और उन्होंने अरुणिमा को। अरुणिमा ने हाथ जोड़ कर उन्हें नमस्कार किया और संन्यासिनी से चिरजीवी होकर देश की सेवा करो, ऐसा आशीर्वाद पाया।

संन्यासिनी ने सब से पहले उसकी नाड़ी देखी, फिर आकृति-परीक्षा की—सब कुछ देख चुकने पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि इसे जैसा लोग कह रहे हैं, वैसी कोई बात नहीं हुई है। हाँ, वायु-शूल की बीमारी इसे अवश्य हो गई है। यह तो दो ही एक जड़ी-बूटी से ठीक हो जावेगी। फिर उमानाथ से कहा—"पपीते का हरा फल सिरके में डाल दीजिए, सिरका अंगूर का हो। एक सप्ताह के बाद वही इसे खिलाइए और उसका रस पिलाइए। एक जड़ी मैं दे रही हूँ, इसे चार काली मिर्च के साथ प्रातः सेवन कराइए। गाय के थोड़े दूध का भी प्रबन्ध करा लीजिए। बस देखिए, एक पखवाड़े में ही यह कम से कम मेरी कुटी तक आने-जाने लगेंगी। जो कुछ खाएँगी, वह भी अच्छी तरह हजम होगा। इसके अलावा नित्य नियम-पूर्वक यह अपने दैनिक कार्यों के साथ-साथ चरखा कातना और चक्की चलाना जारी रखे। यदि इस प्रकार ईश्वर ने चाहा तो

तत्काल कालिमा लगाने वालों को स्वयं अपने मुँह में कालिख पोतना पड़ेगा।"

कुछ देर रुक कर संन्यासिनी ने कहा—"कितना सहज काम है, नारी-जाति को कलंकित करने का। जहाँ किसी पुरुष से वह बोली नहीं कि उस पर उँगलियाँ उठने लगती हैं। इसके विपरीत पुरुषों को अपने कार्यों पर जरा भी ध्यान नहीं आता। वह किसी स्त्री को अपनी काम-तृप्ति का आधार बनाने का अधिकारी हो सकता है और सामाजिक धर्म-संकट के उपस्थित होने पर, उसे अच्छी तरह ठुकरा कर सच्चा और सदाचारी बना रह सकता है। मैं देखती हूँ कि आये दिन ऐसा दुष्कर्म करने वाले ही सर्वप्रथम दूसरों पर कीचड़ उछालते दृष्टिगोचर होते हैं। आपके पुरोहित जी...कहते-कहते वह रुक गई। फिर बात बदल कर उसने कहा—"पुरोहितजी समय रहते यदि नहीं चेत जाते तो सम्भव है कि उनका भी तिरस्कार समाज जल्द करे और अरुणिमा के इस थोथे कलंक का बदला चुकाए।"

उमानाथ ने कहा—"आपके समक्ष मैं कुबुद्धि क्या कह सकने योग्य हूँ। किन्तु हाँ, इतनी प्रार्थना अवश्य करूँगा, मुझे विश्वास और आशा है कि आप उसे स्वीकृति प्रदान करेंगी।"

संन्यासिनी ने उसी आवेश में कहा—"कहिए, आपकी बात यदि मैं न मानूँगी तो फिर किसकी मानूँगी? आपका अनुभव और सांसारिकता

का ज्ञान बहुत दिनों का है। उससे लाभ उठाना संन्यासी एवं गृहस्थ दोनों का काम है। आपका अनुभव बहुत दिनों का है; आपने बहुत से उलट-फेर देखे हैं। बहुत से ऐसे षड्यंत्र भी देखे हैं। मैं आपकी बात अक्षरशः मानने के लिए बाध्य हूँ। पिता जैसी आपकी मनमोहक शक्ति मेरे लिए बल देगी। वह मार्ग-प्रदर्शन करेगी; अगर मैंने बिना आपकी अनुमति के कोई ग़लत कदम उठाया तो काम तो बिगड़ ही जावेगा, संसार में हँसाई भी होगी।" संन्यासिनी ने गम्भीर भाव से कहा—"भगवान न करे कि मुझे अवज्ञा करनी पड़े, समय का प्रभाव है कि एक कुँआरी कन्या के सतीत्व में सन्देह किया जा रहा है—उनकी जीभ कट कर नहीं गिर जाती जो ऐसा कहते हैं। और ऐसे लोग जो धर्म के ठेकेदार और हमारे पुरोहित, हमारे दुःख-सुख के साथी, हमारे रहनुमा और पद-प्रदर्शक ही जब पथ-भ्रष्ट हो चले हैं तो फिर औरों का क्या कहना है! जिस धर्म की आड़ लेकर आज वह हम पर प्रहार कर रहे हैं। ईश्वर ने चाहा तो वह दिन जल्द आवेगा कि जब हम इनकी बोलती बन्द कर सकेंगी। आप हमारे धर्म के पिता हैं, आपका आदेश मानना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। मैं आपको बता देना चाहती हूँ कि क्षण भर में मैं ऐसा वायु-मंडल तैयार कर सकती हूँ कि जो पुरोहितजी का सारा गोरखधंधा उलट दे, मगर नहीं, जब तक आपका आदेश न मिलेगा, मैं शान्त भाव से सारी बातों को देखती रहूँगी। लोहू का घूँट पी कर भी शान्त रहूँगी, यह आपको संन्यासिनी वचन देती है।"

उमानाथ ने नम्रता-पूर्वक कहा—"आप अरुणिमा के लिए यहाँ

कटुता का भाव रखने वाले समाज की आँखों का काँटा न बनें। आप जिस पथ पर हैं, उसे ही सफल बनाने का प्रयत्न करें और भूले-भटकों को सुमार्ग पर लायें तो अत्युत्तम होगा। अरुणिमा का भाग्य जब तक हम अभागों के भाग्य के साथ नत्थी है, तब तक उसे दुःख छोड़ कर सुख मिल ही नहीं सकता, और न उसे कलंक छोड़ यश मिल सकता है। यह अरुणिमा का दोष नहीं, न पुरोहित का दोष है। दोष सारा का सारा, अपराध कुल का कुल हम अभागों का है, मगर समय हमें अपनी कसौटी पर कस कर खरा उतारता है, या दोषी ठहराता है, यह तो भविष्य ही बतावेगा आप भी इसमें शान्त भाव से हमारी सहायता करती चलें, यही हमारी विनम्र प्रार्थना है।

संन्यासिनी ने इससे प्रभावित होकर कहा—"बस, या और कुछ? मैं आपके कथन पर पूर्ण विश्वास रखती हूँ; किन्तु आप मुझे निरी संन्यासिनी ही न समझें। मैं आपको स्पष्ट बता देना चाहती हूँ कि मैंने संसार के बड़े से बड़े ऐश्वर्य को ठुकराया है, इसीलिए कि गरीबों की तरफ मेरे देखते कोई आँख उठा कर न देख सके। हाँ, एक बात और है यदि इस पुनीत कार्य में मुझे अपना जीवन भी बलि चढ़ाना पड़े, तो मैं खुशी से विष का प्याला पी सकती हूँ। झूलते हुए फाँसी के तख्ते पर उछल कर चढ़ने को तत्पर हूँ, प्रज्वलित चिता में अपना सर्वस्व होम सकती हूँ। मैंने अपना शरीर इसी लिए तपा रखा है। मैं यह भी जानती हूँ कि आप एक जमींदार के ज़िलेदार हैं, लेकिन नहीं, दूसरी जमींदारियों की तरह यहाँ अन्धेर कुछ नहीं है। उसका

चिन्ता जैसा आधुनिक सभ्यता का पुजारी सपूत ! आपके अखिलेश की कामना और आपका सद्व्यवहार, बिहारीमल की आपके ऊपर छाया, एवं अरुणिमा की सेवा और सतीत्व। और सब से बड़ी बात, सुखरानी और उमानाथ का पुण्य-प्रताप। सब एक से एक अनोखे। और अपनी-अपनी धुन के पक्के जहाँ एकत्र हों, वहाँ तब भी गाँव में अशान्ति फैले यह सब फूट 'डालो और मौज उड़ाओ'—जैसी मनोवृत्ति के पुराने धर्म के ठेकेदारों की करतूत है, और कुछ नहीं। जब उनका सिक्का समाज के बीच से उखड़ता चला जा रहा है तो कुछ फूट, कुछ पाप और कुछ पाखंड से अपना उल्लू सीधा करने का प्रयत्न न करें तो संध्या को बहू-बेटियाँ भूखों मरें। दूसरा कोई परिश्रम तो कर नहीं सकते। सब दिन मुफ्त की रोटी खा आए—अपने दरवाजे पर एक लोटा पानी भी कभी नहीं उँडेला। दूसरे का ऐश्वर्य—इतने पर भी कभी सुख से नहीं देखा—तो अरुणिमा को ही नहीं, बल्कि वे तो लक्ष्मी को भी कलंक के तीर से घायल और बदनाम कर सकते हैं।

"एक कुँआरी कन्या के प्रति इन लोगों ने क्या कम अन्याय किया है? उमानाथ, आपका विवेक सराहनीय है—अनुकरणीय है। आप प्रशान्त महासागर जैसी विशाल निधि हैं। लेकिन संसारी मोह-माया का यह तकाजा नहीं है। अरुणिमा सब कुछ कर लेगी। आप इसे अच्छा हो जाने दीजिए। इसकी विद्यालय की वानरी सेना जब 'हू, हू' करके चलेगी तो एक पुजारी नहीं, सैकड़ों पुरोहितों का दीवाला—यदि वे सुमार्ग पर न आये—पल भाँजते निकल जावेगा। क्या आपको पता नहीं, द्रौपदी पर आँख उठाने वालों के साथ पांडु-कुमारों ने क्या किया था?"

उमानाथ ने कहा—"अभी हमारा ध्येय इन छोटी-मोटी बातों की तरफ़ न जाना चाहिए। अपना मूल उद्देश्य सफल करने के लिए तन, मन और धन से प्रयत्न होना चाहिए। मुख्य प्रश्न का हल निकल आने पर सारी समस्याएँ अपने आप सुलझ जावेंगी। यही नहीं सब से पहले हमें अपनी सामूहिक दरिद्रता को समूल नष्ट करने के लिए घरेलू कारोबार की उन्नति की ओर ध्यान देना चाहिए। आप समझ नहीं रही हैं। मनुष्य जो यह समझता है कि प्रकृति और ईश्वर की आँखों में धूल झोंक कर हम अपना उल्लू बराबर सीधा किया करेंगे यह उसकी एकमात्र मूल है। समाज जिस बुराई की सीमा को लाँघ चुका है, फिर से उसे भलाई के क्षेत्र में लाना एक-दो दिनों का काम नहीं है। जब तक हमारी रोटी और कपड़ों की समस्या हल नहीं होती तब तक एक न एक स्वार्थ लोलुप पुरोहित इसी तरह से बराबर दाल-भात में मूसलचन्द बनते और निकलते रहेंगे। स्वार्थ और खुदगरजी की पट्टी जब तक हमारी आँखों से बँधी रहेगी—हम पहिचान न सकेंगे कि कौन हमारा अहित कर रहा है और कौन हित? देश के बहुत से लोग जिस बात को जानते भी हैं, विवश होकर उसके विरुद्ध उन्हें अपनी सम्मति देनी पड़ती है। अगर वह ऐसा न करें तो कल ही उनकी रोटी बन्द हो जाए। बेटी-बेटों की सगाई न हो, सेंध लगा कर माल और असबाब चला जाय, खड़ी खेती कट जाय, नाना प्रकार के उपद्रवों का बाजार गर्म हो जाय, इसी से सब लोग कान-पूँछ बिना हिलाये साथ दिये चले जाते हैं। किन्तु जिस दिन ऐसे स्वार्थियों का भंडा-फोड़ होगा, उनका कहा कोई न सुनेगा। दाने-दाने को तरस जाएँगे। शरीर पर कपड़ा न रहेगा, सारा संसार उनका वीभत्स रूप देखेगा और पछतायेगा, उनके वर्त्तमान और भविष्य को।"

उमानाथ की गम्भीरता-युक्त बातों को सुन कर संन्यासिनी अपने मन में कहने लगी—ऐसी ही हस्तियों से पृथ्वी पर धर्म टिका है। इतना घोर पाप होते हुए भी पुण्य की पताका कहीं न कहीं फहराती जा रही है। सचमुच जैसा मैं सुनती थी, उमानाथ वैसे ही धैर्य, और शील के निधि निकले। "हाँ तो मैं आपका अभिप्राय समझ गई।"

उमानाथ ने फिर कहा—"आप में दैवी-शक्ति है। उसकी प्रेरणा से सब कुछ जान सकती हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, जो मेरे दिल में है, उसी का इजहार कर रहा हूँ। यह नहीं कि दिल में कुछ हो और कहूँ कुछ। आप समझ लें, यही आये दिन दुनिया के रंगमंच पर हो रहा है और समाज स्वार्थी बनकर उसका समर्थन करता चला जा रहा है। मगर यह क्रम अब अधिक दिनों तक नहीं चल सकेगा।"

संन्यासिनी ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं जिस जंजाल से बाहर निकली, क्या उसी में आप फिर फँसाना चाहते हैं?"

उमानाथ ने कहा—"नहीं, हर समाज के कार्य-कर्ताओं का ध्यान अविलम्ब इधर आना चाहिए। यह जंजाल नहीं, सुलझाव है। यही देश की सच्ची सेवा है और इसी में समाज की भलाई निहित है। अगर सभी देश-हितकारी लोग यह समझने लगें, तो देश और समाज का बेड़ा पार न लगे। बीच धारा ही में वह डूब जाय। यही नहीं जगत का सारा कारोबार ही रुक

जाय। मानव-समाज का तकाजा है कि वह बुरों को सीधी राह पर लावे, और मनुष्य-जन्म सार्थक करने के लिए समाज का भला करे। अपनी शक्ति भर वह प्रयत्न करे और फल परमात्मा की इच्छा पर छोड़ दे। हर समाज का उससे सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति के उपर एक प्रकार का ऋण हुआ करता है, जिससे मुक्त वह दान-दक्षिणा-योग-जप और यज्ञों के करने से नहीं हो सकता, इससे तो मुक्त वह तभी हो सकता है, जब वह समाज का कोई न कोई हित करे। व्यर्थ की विडम्बना समाज को बुरा और बलहीन बना डालती है। समाज तो एक प्रकार की चक्की है, जिसमें सब को पिसना पड़ता है। उसका समान रूप से सब पर प्रभाव पड़ता है। किसी को यह कहने का समय अवसर ही नहीं देता। सब को अपने आप तत्पर होकर समाज का छप्पर उठाना चाहिए। यदि यही भाव सब के हृदयों में जाग्रत हो जाए तब समाज का उद्धार जल्द हो सकता है; किन्तु यह भाव तब तक उदय नहीं होते, जब तक शुभ दिन आने के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते। निर्धन व्यक्ति इसके लिए अधिक लालायित रहते हैं; किन्तु धनवान इसके विपरीत बराबर यह प्रयास किया करते हैं कि जब तक समाज इस अवस्था में रहे ठीक है। क्योंकि ऐसा करने से उन्हें चूसने का काफी अवसर मिलता है और उनका स्वार्थ सिद्ध होता है। इस प्रकार की असमानता समाज को जर्जर बना देती है दुखदायी निर्धनता सर्वदा घेरे रहती है, कोई क्षण सुख का नहीं आता। इस प्रकार की सामाजिक अव्यवस्था देश में परस्पर कलह और फूट पैदा करती है। किसी को सुख चैन नहीं लेने देती। इसी से देश बराबर अवनति में पड़ा रहता है। और उसकी वर्त्तमान अवस्था से पूँजीपति एवं साम्राज्यवादी लिप्सा अपना स्वार्थ-सिद्ध करती जाती है।"

संन्यासिनी ने फिर कहा—"अच्छा तो फिर आप अरुणिमा की तबीयत सुधर जाने दीजिए। मुझे सहस्रों गुरुओं से जो इतने दिनों में नहीं मिल पाया था, उसे आप जैसे कर्मनिष्ठ महा-पुरुष ने क्षण भर में प्रदान किया। मेरा कार्य-क्षेत्र अब आपके कथनानुसार यही होगा।"

उमानाथ ने कहा—"हम लोगों का अहो भाग्य कि घर बैठे आपके दर्शन दिया, 'बिनु हरि कृपा मिलैं नहिं सन्ता' ऐसा गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है।

संन्यासिनी ने कहा—"अब तो काफ़ी विलम्ब हो चुका है। सन्ध्या होने के समीप है। वहाँ सामूहिक प्रार्थना का कार्य पूर्ण करना होगा।"

"मैं चलूँ, पहुँचा आऊँ?" उमानाथ ने आग्रह-पूर्वक कहा।

संन्यासिनी ने नहीं कह कर अपना हैंड-बेग उठाया और शीघ्रता से चली गईं।

अरुणिमा सब सुनती और समझती रही और निश्चय भी करती रही कि स्वास्थ्य-लाभ करने पर कन्या-पाठशाला के चलाने के साथ-साथ मुझे और क्या करना है। दवाइयाँ सब आ गईं, मंगल का शुभ दिन था, उसी दिन से विधि-पूर्वक सेवन करना प्रारम्भ कर दिया। पहली खुराक से ही उसका रोग हटता नजर आया। उसे रह-रह कर जो शूल उठता था, वह रुपये में अधिक तो नहीं, चार आने अवश्य कम हो गया।

सातवाँ परिच्छेद

अखिलेश एम० ए० फाइनल की परीक्षा दे चुका। उसका साथी चिन्ता इसे चिन्ता में डाल कर विलायत जा चुका था। वहाँ से उसका पत्र परीक्षा के समय ही अखिलेश को मिला था, किन्तु समयाभाव के कारण उत्तर देना शेष रह गया था। चिन्ता ने लिखा था—"मैंने रहने का प्रबन्ध यहाँ के एक अँगरेज कुटुम्ब के साथ कर लिया है। उस घर में माता-पिता के अतिरिक्त एक युवती रहती है और चौथा मैं। यही उसका और मेरा कुटुम्ब है। यहाँ मैं आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में एम० ए० फाइनल करने के बाद आई० सी० एस० की परीक्षा में बैठूँगा। पढ़ाई-लिखाई तो थोड़ी होती है, उसकी जगह क्लबों में, लाइब्रेरियों में, सिनेमा और देशाटन आदि उपकरणों द्वारा समय काटा जाता है। इन्हीं वस्तुओं के साथ शिक्षा भी होती जाती है। खाना तो यहाँ हरएक घर को होटल ही में जाकर खाना पड़ता है। महीना खतम हो जाने पर बिल चुकाना पड़ता है। यहाँ के खर्च बहुत बढ़े-चढ़े हैं। हालाँ कि यहाँ आत्म-निर्भरता अधिक है। मजदूरों की मजदूरी भी अधिक है। यहाँ भारतवर्ष की तरह एक कमाये और दस खाएँ, ऐसा नहीं है। सामाजिक प्रतिबन्ध भी उतने नहीं हैं। पिता को पुत्र के घर जाने और पुत्र को अपने पिता के निवास-स्थान पर जाने के वक्त खाने के खर्च का बिल चुकाना पड़ता है। सारा देश और टापू कल-कारखानों से भरा पड़ा है। कोई निरुद्यमी नहीं मिलता, भिखमंगे

तो नाम-मात्र को भी नहीं मिलते। पार्लियामेंट में कई दल अवश्य हैं, मगर देश का प्रश्न सम्मुख आने पर भारतवर्ष की तरह कोई भी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाता नहीं मिलता। साहस और कुशलता लोगों में कूट-कूट कर भरी दिखाई पड़ेगी। इतना ही नहीं, सर्वत्र चहल-पहल के बीच भी शान्ति विराजती है। दुनिया के कोने कोने के ताजे समाचार सर्वसाधारण तक ज्ञात होते रहते हैं। यहाँ भारतवर्ष की तरह साक्षरता-दिवस भी नहीं मनाना पड़ता। कोई व्यक्ति निरक्षर शायद ढूँढे पर भी नहीं मिले। मामूली पढ़ना-लिखना तो सभी जानते हैं। यहाँ का अटूट साहस और सहयोग ही सारे संसार पर शासन करने की क्षमता रखता है। संकट के समय सब एक और पार्टी के सिद्धान्तों का प्रश्न छिड़ने पर अपने पक्ष और मत का समर्थन प्राप्त करने के लिये तन, मन और धन से जुट जाते हैं। यही उनका अध्यवसाय प्रशंसनीय है। पक्के सिद्धान्तवादी और नियमित काम करने वाले होते हैं। देश की मान-अपमान की बात में क्या मजाल कि कोई इञ्च भर भी पीछे हटे। स्वाभिमान की रक्षा के लिए कट मरना अँग्रेज जाति ही जानती है। किसी को यदि कोई दुनियावी गुण सीखना हो, यहाँ आकर इनसे सीखे। चतुर कूटनीतिज्ञ, भोली-भाली बातें करके लोगों को भूलभुलैया में डाल रखना इनका सहज स्वभाव है। पदारूढ़ पार्टी जब तक विपक्षी स्टेज पर रहती है, भारत की भलाई की मौखिक बातें खूब करती है; मगर शासन की बागडोर हाथ में आते ही वह केवल एक मखौल रह जाता है और सिद्धान्त की दोहाई देने वाले लीडर फिर देश की राग में अपना सुर मिलाकर अलापने के अलावा और कुछ नहीं करते।"

अखिलेश किताबों में इङ्गलैंड के रहन-सहन का जिक्र बराबर पढ़ता और आश्चर्य करता था, मगर आज वहाँ की कहानी चिन्ता के पत्र में पढ़कर उसे और दिलचस्प मालूम होने लगी, किन्तु न जाने क्यों कुतूहल की जगह स्वभावतः उसकी खिन्नता बढ़ती जाती थी।

अखिलेश ने सोचा—मैं उसे क्या लिखूँ यही कि परीक्षा दे चुका, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण अवश्य होऊँगा। अरुणिमा आज-कल कुछ बीमार-सी रहती है, घर जल्द ही जाऊँगा, पिता उमानाथ और सेठ बिहारीमल अच्छे हैं। जमींदारी का काम अन्य जमींदारियों की अपेक्षा अच्छी तरह चला जा रहा है। देश की परिस्थिति आपको मालूम ही है। आदि।

अखिलेश चिन्ता के पत्र का उत्तर लिखकर घर जाने वाला ही था कि अचानक पुलिस का एक दल उसके कमरे के चारों तरफ़ आकर खड़ा हो गया, तलाशी ली जाने लगी; कोई आपत्तिजनक वस्तु तो कमरे में नहीं मिली। हाँ, एक तिरंगा झण्डा, कुछ स्वरचित कविताएँ एव शहीदों के कुछेक फोटो मिले। पुलिस ने उन्हें हिरासत में ले लिया और कमरे में ताला बन्द करके अखिलेश को वारन्ट दिखलाया गया।

"क्या मैं इसके द्वारा गिरफ्तार किया जाऊँगा?" अखिलेश ने खुफिया पुलिस के इंस्पेक्टर से पूछा।

पुलिस इंस्पेक्टर ने नम्रता-पूर्वक कहा—"जी हाँ, आपके ऊपर कोई अभियोग नहीं चलाया जायेगा, बल्कि आप बेमियाद नजरबन्द किये जा रहे हैं।"

अखिलेश ने अपने को धन्य कहा—प्रसन्न वदन पुलिस की कार में बैठा। होस्टल के छात्रों ने जय के नारों के बीच अखिलेश को विदा किया। कार ने भोंपू बजाया ; अखिलेश चन्द ही मिनटों के भीतर जेल की चहारदीवारी के अन्दर पहुँचा दिया गया।

जेल की विचित्र दुनिया में पहुँच कर वह अपने को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करने लगा ; किन्तु वहाँ का दूषित वायु-मण्डल उसे ठीक न जँचता। अखिलेश को राजनैतिक-बन्दियों का श्रेणी-विभाजन और खलता था। मजिस्ट्रेट की सिफारिश पर उसे 'ए' क्लास में रखा गया था।

मगर उसने 'सी' क्लास वालों की दुर्दशा अपनी आँखों से देखी; उन्हें चक्की चलाने, राम बाँस कूटने और रस्सी बटने का काम करना पड़ता था ; खाना तो अभूतपूर्व मिला करता था। गँड़ासे से कटी बड़ी फाँक वाली—ब्रह्म-भोज-जैसी तरकारियाँ—वहाँ तो प्रेम और प्रीति के कारण वह अमृत-तुल्य जँचती, किन्तु यहाँ तो दुर्भावना एवं भर्त्सना से वह ज़हर सी प्रतीत होती थी। इन बातों को देख कर अखिलेश से 'ए' क्लास की मिली सुविधाएँ अपने आप विदा चाहने लगीं। उसने उन सारी आराम की वस्तुओं पर लात मार दी और और 'सी' क्लास के

राज-बन्दी जैसा जीवन व्यतीत करने लगा।

अरुणिमा का पत्र अखिलेश को विश्वविद्यालय से लौट कर एक सप्ताह बाद जाकर जेल में मिला। उसमें उसने पुरोहित के दुष्कर्मों एवं उसकी मनोवृत्ति के विषय पर काफ़ी प्रकाश डाला था; पढ़ कर वह जी मसोस कर रह गया।

उमानाथ की शालीनता ने उसे उग्र होने से बचाया था। मगर अब वही रह-रह कर उसे उत्तेजित करती जाती थी। इसे रह-रह कर उबाल आता, मगर अहिंसा का मूल प्रश्न यहाँ भी सामने आता। इसने सोचा—यह हमारा अथवा पुरोहित का दोष नहीं। यह दोष तो सारा का सारा गुलामी के सिर थोपा जा सकता है। मगर किया क्या जाय, सभी महात्मा और मनीषी थोड़े ही हैं? चिन्ता एवं अरुणिमा के ऊपर कीचड़ उछालना, कितनी उपहास की बात है, अरुणिमा ने अपराध चाहे कुछ भी न किया हो; किन्तु संसार में बदनामी और अपमान—यही सब कुछ हो गया। आज यदि मैं बाहर होता, तो पुरोहित से अवश्य बदला लेता। मगर उसकी प्रतिहिंसा प्रवृत्ति उसके उच्च विचारों के कारण फिर दब जाती थी। इसी उधेड़-बुन में इसका चित्त रहने लगा।

एक दिन उसे ज्ञात हुआ कि नजरबन्दों के ऊपर अभियोग प्रमाणित करने के लिए एक स्पेशल मजिस्ट्रेट की नियुक्ति होने वाली है; उसे अपना बयान एवं सफ़ाई पेश करनी होगी। वह अपने मुकदमे की पेशी की राह देखने लगा।

———

आठवाँ परिच्छेद

अरुणिमा की तबीयत उसी दिन से सँभलने लगी, जब से संन्यासिनी उसे देख गई। दूसरे-तीसरे दिन संन्यासिनी जरूर आतीं और उसे देख जातीं। एक सप्ताह के उपरान्त अब अरुणिमा इस योग्य हुई कि अपने घर से कुटी तक आ जा सके। संन्यासिनी उससे कहतीं कि अभी तुम्हें मानसिक विश्राम के साथ शारीरिक शान्ति की भी अत्यन्त आवश्यकता है। तुम एक पखवाड़े के भीतर ही पूर्ण रूप से पहले की तरह स्वस्थ हो कर अपना प्रतिदिन का कार्य प्रारम्भ कर सकोगी।"

अरुणिमा कहती—"यह एक पखवाड़ा—क्या लीपइयर वाला ३६६ दिन का—वर्ष तो नहीं हो जावेगा?"

खैर, ज्यों-त्यों कर के एक पखवाड़ा बीता। उसके पैरों में क्रमशः बल आने लगा, पेट पूर्ववत् काम करने के लिये सन्नद्ध जान पड़ने लगा। चेहरे की मुरदनी जाती रही। उसके गोल गुलाबी कपोलों पर एक प्रकार की देदप्यमान आभा दिखलाई पड़ने लगी। हाथों में ताकत और दिमाग में और दिल में मजबूती फिर जैसी की तैसी आ गई।

सुखरानी और उमानाथ तो यही सोचते कि संन्यासिनी हमारी डूबती नाव को पार लगाने में सहायक हो गईं। हम कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रह गये थे। लोक और परलोक दोनों बिगड़ चुका था। इसे संन्यासिनी के प्रताप ने सँभाल लिया। अरुणिमा वास्तव में तू निर्दोष

देवी जैसी है। बलजोर भी यही करता और पुरोहितजी की खूब चुटकियाँ लेता। पुरोहित जिधर भी जाते, लोग उन्हें देख कर घृणा से मुँह फेर लेते थे। छोटे बच्चों ने भी उन्हें बनाना आरम्भ कर दिया था। घर बाहर सब जगह बेचारे की बुरी गत होने लग गई थी। यही नहीं, अब कहीं सत्यनारायण की कथा बाँचने को भी कोई बुलाता न था। उमानाथ को यह बात बहुत खलती थी।

उमानाथ दुनिया से परे एक सात्विक वृत्ति के सरल पुरुष थे, तमोगुण तो उनमें कभी दिखाई नहीं पड़ा। किसी का दिल दुखाना तो वे जानते ही न थे। हमारी बातों से किसी को कष्ट न हो, यहाँ तक बचाव करते थे। ऐसी सत्प्रकृति का व्यक्ति अपने एक पुरोहित ब्राह्मण को कैसे दुखी देख सकता था? दीन-दुखियों की पुकार पर आँसू बहाने वाला उदार व्यक्ति किस प्रकार पुरोहित को कष्ट सहता देख सकता था? जहाँ तक मनुष्यता का नाता और सम्बन्ध है यही होना भी चाहिए था। लेकिन इसके प्रतिकूल विचार-धारा तो माया-मोह में फँसे व्यक्ति के लिए थी। उमानाथ को ऐसा आचरण शोभा न देता। उनके पवित्र चरित्र में ऐसा काम एक बदनुमा धब्बा हो जाता।

पुरोहित भी मन में सकुचाते थे और उन्हें अपने पाप-कर्मों के कारण उमानाथ के सम्मुख जाने का साहस न होता था। जाते कैसे, जाने की ताब तो उनमें थी नहीं। अपने इष्ट-मित्रों के द्वारा अवश्य कहलाते थे। उमानाथ हृदय रखते थे। उनके दिल में दया थी। पुरोहित क्या, अपना सिर काटने वाले को भी वह आदर दिया करते थे। पुरोहित को

यह पता था कि अगर मैं उनके समक्ष दो मिनट के लिये भी चला जाऊँ तो सारा झंझट खतम हो जाये, लेकिन इतना साहस कहाँ कि एक तेजस्वी आतमा के सामने कलुषित आत्मा जा सके। उमानाथ बराबर सोचते, वह जितना ही सोचते थे उतना ही विचार-धारा में डूबते जाते थे। संसार की ओर दृष्टि उठा कर देखते तो एक महान् क्रान्ति-सी होती दिखाई पड़ती। आत्मा की ओर ध्यान जाता तो वहाँ भी एक लहर-सी उठती मालूम होती। कहीं भी शान्त वातावरण न मिलता। एक दिन उन्होंने अपनी स्त्री से परामर्श किया कि पुरोहित का क्या किया जाय ?

सुखरानी ने कहा—"पुरोहित के बाल-बच्चों का बुरा हाल है। दो-दो दिन तक उपवास और फाका हो रहा हैं। इसका पाप किस के सिर जावेगा ?"

उमानाथ ने कहा—"मैं किस-किस के मुँह में जीभ डालूं, किस-किस की जबान पकड़ू ? लेकिन बिहारीमल से हमने ज़रूर कहा है कि आप एक पाठ बैटा दीजिये। पुरोहित की जिसमें रोज़ी लग जावे। यही एक उपाय है और दूसरा तो कोई रास्ता नहीं दिखलाई पड़ता।"

सुखरानी ने कहा—"ठीक है।"

बलजोर को कहीं से इसका पता लगा। वह दौड़ा-दौड़ा आया और उमानाथ ने लगा कहने—"आप तो विलक्षण पुरुष हैं, जिसने अभी कल ही आपको समाज के बीच तिरस्कृत किया है, उसी के उपलक्ष्य में अब

आप उसे गाँव का गुरु बनाने जा रहे हैं; पाठ बैठवाने की सलाह भी आप सेठ जी को देने लगे हैं। सोच लीजिए, इसका परिणाम ठीक न निकलेगा।"

सुखरानी ने कहा—"अब जाने भी दो। कहाँ तक उसके पीछे पड़ोगे। उसका मोह अगर न हो, तो न सही, मगर उसके बिलबिलाते बच्चों को तो देखो उनका क्या अपराध है? उन सब ने किस का क्या बिगाड़ा है? अगर वे कुछ करने-धरने वाले होते, तो मैं कभी भी उनके साथ ऐसा व्यवहार करने के लिये न कहती, मगर सोचो समझो! उन नादान बच्चों के भूख से उत्पीड़ित पंच-तत्व के अधपके शरीरों को कितना कष्ट हो रहा होगा? वे भूखे ही सो जाते होंगे, भूखे पेट जागते भी होंगे। उस अभागिनी पुरोहितानी की हालत अपनी सन्तानों को देख कर क्या होती होगी। मनुष्यता के नाम पर ही सही बलजोर, इसे तुम मान जाओ।"

ये सब बातें हो ही रही थीं कि संन्यासिनी को साथ लिये अरुणिमा वहाँ पहुँच गई। बलजोर ने इन दोनों को सम्बोधित करते हुए कहा— "उमानाथ और सुखरानी सतजुगी जीव हैं, कलियुग में ऐसे आदमियों का गुजर होना बिलकुल ही कठिन है।"

संन्यासिनी ने पूछा—"किस बात पर इतनी जली-कटी सुना रहे हो?"

बलजोर ने कहा—"उमानाथ यहीं तो बैठे हैं इन्हीं से पूछ लो। मुझ में ताब नहीं रही कि उस वृत्तान्त को आपके समक्ष रख सकूँ।"

उमानाथ ने कहा—"संन्यासिनी जी! उस पुरोहित के बाल-बच्चों की हालत बहुत खराब हो रही थी। दो-दो दिन तक वे दाना और रस खा-पीकर बराबर रह जाते थे, कभी-कभी भूखे रोते सो जाते। एक दिन पुरोहितानी ने गिड़गिड़ा कर मुझे अपना सारा किस्सा सुनाया। उन्होंने कहा—यह सामाजिक बहिष्कार आप लोग, पुरोहित से कर रहे हैं कि मुझ अबला और इन निरीह नादान बच्चों से? मेरा जी भर आया—मैंने सेठजी से कह कर पुरोहितजी को एक पाठ करने के लिए नियत कर दिया। आप स्वयं सोचें, मैंने ईश्वर की इन संतानों के साथ यह अच्छा व्यवहार किया कि बुरा? ईश्वर इसे अच्छा समझेगा कि बुरा?

संन्यासिनी निरुत्तर हो गईं और अरुणिमा स्तब्ध। वह अपने पिता की सहज-सरल प्रकृति को खूब जानती थी और माँ की सहृदयता को भी। इन बातों का पता उसे काफी था।

उसने कहा—"पिताजी, आपने ठीक किया।"

संन्यासिनी और बलजोर ने भी इसे उचित समझकर हाँ में हाँ मिलाया। इन लोगों को ऐसी मामूली बातों में फँस कर—इनमें उलझ कर अपनी शक्ति नष्ट नहीं करना था।

अरुणिमा ने कहा—"जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। पुरोहितजी अमन सभा के मेम्बर और पुरोहितानी देश-भक्त-समिति की सदस्या।"

संन्यासिनी ने कहा—"ठीक है, बिना किसी पुष्ट-विरोध के किसी सभा अथवा समाज में नव-जीवन नहीं आ सकता। धीरे-धीरे जो वस्तु बढ़ती है, वह अन्त तक सब को अपने उदरस्थ करने की क्षमता रखने वाली बन जाती है।"

देश-सेविकाओं की ट्रेनिंग भी आरम्भ हो गई थी। यहाँ पर मार्चिङ्ग अनुशासन-पालन, संयम, फ़र्स्ट एड (प्राथमिक चिकित्सा) आदि उपयोगी बातें बताई जाने लगीं, अहिंसा का उद्देश्य, अपने द्वारा किसी के दिल को चोट न पहुँचे ; अपना स्वार्थ-सिद्ध करने के लिए भी इस मार्ग से विचलित न हों, इसी को वे अपना धर्म समझते और इसी को अपना कर्म और सबसे बढ़कर इसी को अपना प्रधान कर्तव्य।

देश-सेविकाएँ दिनों-दिन अपने कर्तव्यों में दीक्षित होने लगीं। उनकी खादी की साड़ी और जम्पर दोनों का रंग स्वयं शान्ति का अचल स्वरूप धारण करके अपनी निराली छटा नील-गगन के नीचे बिखेरने लगा।

पुरोहित को उमानाथ की इस उदारता द्वारा और अधिक शिक्षा मिली। वह कहा करते—"वही वास्तविक सुजनता है ; उमानाथ मनुष्यता से परे एक देव-मूर्ति हैं, उनका सहज-सरल स्वभाव हमें पग-पग पर शिक्षा देता-फिरता है ; परन्तु मैं क्या कहूँ, अपनी दुर्बुद्धि को जो हमें पीछे ढकेला करती है। सुखरानी की सहृदयता का क्या कहना; वह तो साक्षात् देवी का अवतार है। रही अरुणिमा ; वह तो पूरी सरस्वती और लक्ष्मी है। संन्यासिनी आकर सोने में सुगन्धि बन गई। मैं देखता हूँ और आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा हूँ कि मेरी पुरोहितानी भी उधर

ही झुक रही है ; बिटिया पढ़ने जाने लगी और अब तो सभी केसरिया बाने की साड़ी पहिने, तिरंगा झंडा लिये घूमती हैं। मालूम होता है कि भारत के दिन अब अच्छे आने वाले हैं, जब स्त्रियाँ ही स्वराज्य लेने के लिए उद्यत हैं, तब कौन सरकार इनका कहा न करेगी। तबीयत तो होती है कि मैं भी सारी जिन्दगी के बुरे कृत्यों का प्रायश्चित कृष्ण-मन्दिर का पुजारी होकर कर डालूँ। मगर अभी नहीं, समय नहीं आया है।"

"अगर आज उमानाथ की दया-दृष्टि इधर न हुई होती तो पुरोहित को छट्टी का दूध याद आ जाता। लेकिन क्या करूँ, मेरा वश यदि कुछ चलता तो उमानाथ को रोकता।" बलजोर अपने उद्गार प्रगट करता।

अरुणिमा ने बलजोर के पैर छूकर कहा—"चाचा ! आपकी मेहनत और सफ़ाई से आज मैं समाज में मुँह दिखाने वाली बनी। संन्यासिनी आपकी बहुत प्रशंसा किया करती हैं। आप तो प्रार्थना में जरूर ही जाते होंगे।"

"हाँ, कभी-कभी।' सिर हिलाकर बलजोर ने कहा।

अरुणिमा ने वहाँ की सारी व्यवस्था समझाई। वह बता रही थी कि यह हमारी भावी सन्तानें निडर, त्यागी और परोपकारी बनेंगी। तभी एक स्टेशन का कुली काले रंग का साफा बाँधे और नीले रंग की कमीज पहिने वहाँ पहुँचा। उसने अरुणिमा को एक गुलाबी रंग का लिफाफा दिया और एक छोटे कागज पर अरुणिमा का दस्तखत लेकर

उलटे पाँवों वहाँ से चला गया। अरुणिमा ने उस लिफाफे को खोला, तो पता चला कि तार अँग्रेजी में है। वहाँ से वह बलजोर को साथ लिए संन्यासिनी की ओर लम्बे कदमों बढ़ी।

बलजोर ने पूछा—"क्या संन्यासिनी अँग्रेजी भी जानती हैं?" अरुणिमा ने सिर हिलाकर मानों इसकी स्वीकृति दी।

संन्यासिनी ने तार हाथ में लेकर पढ़ा। अखिलेश 'इंडिया-डिफेन्स ऐक्ट में नजरबन्द कर लिया गया।' अरुणिमा ने सुना।

बलजोर ने अपने दोनों हाथों को सिर पर रखकर कहा—"हा राम! गजब हो गया।" इतना कहकर वह ज़मीन पर बैठ गया।

अरुणिमा ने अपने को सँभाला, माता सुखरानी और पिता उमानाथ ने देशकाल पहिचाना था। वह सुखरानी को सान्त्वना देने लगे। मगर माता का वात्सल्य उमड़ा पड़ता था। वह अश्रु-धारा के रूप में प्रवाहित ही होना चाहता था कि अरुणिमा ने आगे बढ़कर कहा—"माताजी, यही तो आप हमें बाल्यावस्था में कहा करती थीं कि बड़े होने पर अखिलेश और अरुणिमा देश और जाति की सेवा करेंगे और उनके काम आवेंगे। वही तो अखिलेश ने पहले करके मुझे भी रास्ता बताया है। न जाने कितने माई के लाल आज कृष्ण-मन्दिर में अपनी श्रद्धा-भक्ति अर्पण करते चले जा रहे हैं। आप देखतीं नहीं, भाई अखिलेश ने आज आपकी कोख और पिता के मान को सार्थक बनाया है।"

संन्यासिनी ने सिर हिलाकर कहा—"माता सुखरानी, आप विह्वल न हों; आपके अखिलेश जैसे सपूत ही भारत-माता का ऋण चुकाएँगे।

वहीं एक नई दुनिया बसाएँगे, अपना इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखाएँगे और भारत का मस्तक ऊँचा करेंगे। यह एक नाटक का छोटा परदा गिरा है। देखने में जो बड़ा कटु और भयावना लग रहा है। मगर इसका परिणाम मधुर और सुखदायी ही होगा। हम लोगों के जेल एवं अखिलेश के कारावास में थोड़ा सा अन्तर है। वह यह कि हमारा जेल कन्या-कुमारिका से लेकर हिमाचल तक लम्बा एवं मांडवी से सदिया तक चौड़ा है और उनके ऐसे सैकड़ों जेल इस बड़े जेल के अन्दर समाये हुए हैं। मैं कहती हूँ कि अखिलेश का जो मान और गौरव इस छोटी चहारदीवारी के अन्दर जाने से बढ़ा है, वह एम० ए० एल-एल० बी० होकर गरीबों को उलटा-सीधा पाठ पढ़ाने वाले आजकल के कानून पेशा वकीलों के फिरके में जाने से न होता। आप नहीं देख रही हैं कि वर्त्तमान साम्राज्यवाद के अन्दर सुख से फूलने-फलने वाले पूँजीपति गरीबों का खून चूस-चूसकर महाजन, रायसाहब और रायबहादुर आदि पदवियों से आभूषित हो रहे हैं। इन्हें तो इसी में आनन्द है। गरीब मुवक्किलों को चाहे भर पेट सत्तू भी न मिले, लेकिन पेशी के लिये, मेहनताना के निमित्त उनका हाथ इनके सामने ज़रूर फैलता है। मुवक्किल पैदल जाएँ, कुछ परवाह नहीं; मगर वकील साहब कार अथवा फिटन से जरूर जायेंगे। आज-कल तो पुराने घाघ वकीलों के सामने उनके आगे कितने नये प्रेक्टिस करने वाले वकीलों को जिनके पास पटवारी या पुराने मुकदमेबाज़ दलाल और गुरगे नहीं होते हैं, उन्हें अपने पास से किराया खर्च करके कोर्ट में आना-जाना पड़ता है। यूनिवर्सिटी का सूट-बूट कुछ दिनों तक इज्जत-आबरू सँभाले रहता है। आप ही बताइये कि आप अखिलेश को देश को धोखा देने वाला वकील

बनाना चाहती थीं कि उसे देश का सच्चा भक्त और भारत-माता का अनन्य पुजारी ? उसका स्थान आप गरीबों की झोपड़ी में रखना चाहती हैं कि पूँजीपतियों की गैलरी में ? मैं जो समझती हूँ कि आप पहली ही चीज़ को उत्तम और श्रेयस्कर समझती रही होंगी। उसी मार्ग का पथिक आज अखिलेश बना है।"

बलजोर ने कहा—"ठीक है, जब अखिलेश ही वहाँ गया तब हम लोगों का यहाँ क्या काम ?"

अरुणिमा बोली—"चाचा शान्त रहिए ! समय आ रहा है, उतावली न करिए।"

संन्यासिनी ने भी अरुणिमा की बातों का समर्थन किया।

सुखरानी ने कहा—"तो फिर अखिलेश को सज़ा होगी ?" कहते-कहते उसका गला भर आया।

संन्यासिनी ने समझाया—"नजरबन्दों को सजा नहीं होती। वे केवल हमसे अलग करके जेल में रख दिये गये हैं। उनके साथ साधारण कैदियों का-सा व्यवहार नहीं होगा। वहाँ नीति-युक्त बात सामने रखकर काम किया जाता है। मगर उनको इसकी कुछ भी परवाह नहीं रहती वे तो फकीर बने अपनी धुन में मस्त रहते हैं।"

अरुणिमा ने कहा—"चलिए, फिर देखा जावेगा।"

नवाँ परिच्छेद

चिन्ता ने विलायत में रहते हुए बहुत कमाल कर दिखाया। उसमें जो विलासिता का अवगुण यहाँ की यूनिवर्सिटी के वातावरण में उत्पन्न हो चला था, वह वहाँ अनुकूल वायुमंडल के होते हुए भी काफूर हो गया। वह सौन्दर्योपासक ज़रूर बना रहा, किन्तु वास्तविकता का, कृत्रिमता का नहीं। प्रेम का सच्चा स्वरूप उसे विलायत में दिखलाई पड़ा। अंग्रेज परिवार में हिल-मिल कर रहते हुए भी वह भारतीय संस्कृति का पक्का पुजारी बना रहा। इसके अतिरिक्त उसने अपनी हिन्दू संस्कृति को वहाँ इस प्रकार लोगों के सामने रखा, कि वहाँ हिन्दुत्व का एक सुदृढ़ और सुहावना प्रतीक तैयार हो गया। खान-पान, रहन-सहन आदि सभी बातों में उसका भारतीय-पुट बड़े मजे का रहा करता। उसने देशाटन भी खूब किया। तीन-चार भाषाओं अर्थात् अंग्रेज़ी के अतिरक्त लैटिन, जर्मन, फ्रेंच आदि का पूरा ज्ञाता हो गया। दुभाषिए का काम बड़े मजे से चला ले जाने वाला हो गया। जहाँ कहीं हिन्दुस्तान का प्रश्न आता वह बड़ी सहूलि-लियत से उसे हल करने का प्रयत्न करता था।

चलते-चलाते एक मिस का प्रेम इसे इसलिए ठुकराना पड़ा कि इधर अरुणिमा का ध्यान, उधर कामिनी की कामना, सबसे बड़ी बात हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा। इसने बड़े साहस से काम लिया जिसे बिरले ही हिन्दुस्तानी विलायत जाकर पाते हैं। वहाँ की इंडिया-लीग ने विलायत से चलते वक्त इसे एक सफल पार्टी दी। उस पार्टी में चिन्ता ने अपने

भाषण में कहा—"आप विदेश में रहते हुए भी स्वदेश भारत की हित-कामना बराबर कर रहे हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। यही हरएक हिन्दुस्तानी का, वह चाहे जहाँ रहे, प्रधान कर्त्तव्य है कि वह भारत की प्रतिष्ठा बढ़ावे। हमें पूरी आशा है कि हम विलायत की तरह हीं अपने देश भारत को स्वतंत्र देखें। इसमें आप सज्जनों की सहानुभूति बड़ा कमाल दिखा सकती है। मैं भी यहाँ से आई० सी० एस० पास होकर वहाँ जाकर क्या करूँगा, और मुझे क्या करना होगा, मुझसे स्वदेश की कौन सी सेवा होगी, यह सब बातें भविष्य के गर्भ में हैं। इन्हें तो समय ही बतावेगा। ईश्वर आपका स्वदेशानुराग निरंतर बढ़ाता रहे, यही हार्दिक कामना है। ईश्वर इसमें हमारी सहायता करे।"

इंडिया-लीग के लोगों ने चिन्ता को विश्वास दिलाया कि हम सदैव इस बात का प्रयत्न करते रहेंगे। आप स्वदेश को लौट रहे हैं। हिन्दूइज्म की एक अनोखी लहर आपने जो यहाँ पैदा की है उसमें हमारे मुसलमान भाइयों को भी अपनी संस्कृति के लिए पूरी आज़ादी है। उनका भी आप में वैसा ही पूर्ण विश्वास है, जैसा कि हमारा आप में प्रगाढ़ स्नेह। भारत में इस वक्त क्या हो रहा है, हम आँख रखते हुए भी नहीं देख पा रहे हैं। कोई पाकिस्तान की योजना बना कर अखण्ड भारत के अंग-विच्छेद करने में ही तन्मय है, तो कोई वर्त्तमान राज-तंत्र की छत्र-छाया ही में रहना अपनी स्वामि-भक्ति की चरम सीमा समझता है। हमारे महाप्रभुओं को भी यह एक बहाना मिल गया है कि उनमें आपस में मेल नहीं, तनिक भी नहीं, नाम को

भी नहीं । हम हटे कि सिर-फुड़ौवल हुई । बात बहुत कुछ अंशों में सही और दुरुस्त भी है क्योंकि आए दिन यह होता दिखलाई पड़ता है । मुहर्रम, दशहरा, ईद, बकरीद और होली में जहाँ रक्त की प्रचंड नदियाँ बहती हैं, खुशी में गम और गम में खुशी मनाई जाती है । कुछेक गुण्डों और बदमाशों को छोड़ कर शरीफों और निरीह, गरीब जनता की अच्छी तरह से बरबादी होती है । सैकड़ों समुदाय, हजारों फिरके, सब अपने को एक से एक बढ़कर बताने वाले । हम सोचते हैं, विचारते हैं, मगर बुद्धि काम नहीं देती ।

इतना विशालकाय देश इस बीसवीं शताब्दी में भी पराधीन बना हुआ है, यह किसी का दोष नहीं । यह तो अपने किए गये कामों का ही परिणाम है, जहाँ अछूतों की कोई परवाह नहीं करता, स्त्रियों का मान नहीं होता, भाई-भाई में अन्तर है, वहाँ अगर पराधीनता न पैर अड़ाए और साम्राज्यवाद दाँत न गड़ाये, तो क्या स्वतंत्रता दुख झेलने आएगी ?

एक जय-घोष के साथ चिन्ता का जहाज समुद्र-तट से उसके उदर को चीरता और उसकी लहरों के साथ अठखेलियाँ करता आगे बढ़ा ।

चिन्ता कुछ दूर तक मित्रों के अभिवादन में सफेद रूमाल हिलाता रहा । क्षितिज की आड़ में जाने पर वह अपनी सीट पर बैठा समुद्र का रास्ता जहाज के नकशे में देख रहा था कि वहाँ कुछ लाल स्याही से कटा देखा । उसे मालूम हुआ कि पोलैंड पर नाजी जर्मनी का हमला हो चुका है, हमारी सरकार ने भी पोलैण्ड की सहायतार्थ जर्मनी के

विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी है। दो-तीन दिन में ही जर्मनी के यू बोटों ने समुद्रों में एक तूफ़ान-सा वरपा दिया है। उसे मार्ग देख कर ज्ञात हुआ कि हमारा जहाज जिब्राल्टर से घूम कर भूमध्य सागर में होकर न जावेगा, बल्कि केप आफ गुड-होप का पुराना रास्ता तै करके हिन्द-महासागर का उदर चीरता बम्बई पहुँचेगा। उसने सोचा—स्वेज होकर आया था। अब इधर से होकर वापस जाने में एक दूसरा प्राचीन और बड़ा मार्ग देशाटन के लक्ष्य में आ जावेगा। जिब्राल्टर से आगे कुछ दूर चल कर उसे यह मालूम हुआ कि हम गर्मी की दुनिया में पहुँचने के पहले ठंडक की रँगीली दुनिया में पहुँच रहे हैं यहाँ जाड़े की वर्षा का अनुपम दृश्य बड़ा ही मनमोहक था। फिर रेतीले मैदान के तटवर्त्ती प्रदेश को लाँघ चुकने पर विषुवत रेखा के तटीय समुद्र से होकर चले। अन्त में केपटाउन पहुँचे। यहाँ भी भूमध्यसागरी प्रान्त का ही दृश्य आँखों के समक्ष आया। बात यह थी कि यहाँ भी जाड़ों में ही पछुआ हवाओं से पानी बरसा करता है और गर्मी का मौसम बिलकुल सूखा जाता है। आगे चलने पर ज्ञात हुआ कि इस बार हमारा जहाज अदन न जा कर सीधे बम्बई पहुँचेगा। हिन्द महासागर में जहाज ज्योंही पहुँचा, हवा का एक ऐसा झोंका आया कि मालूम होने लगा जहाज अब गया। लोगों की जान सूखने लगी। एक प्रकार की हलचल और भगदड़-सी मच गई। सब लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। जहाज के कप्तान को वायरलेस से इस तूफ़ान का पता पहले से ही चल गया था। इसलिए वह काफ़ी सजग था। फिर भी दिल दहल गया। वह क्या सभी ईश्वर को बार-बार याद करते और कहते—बचा परमात्मा, अब

पतवार तेरे ही हाथों है, तू ही सारे जगत का रक्षक है। इस प्रकार जहाज़ के सारे यात्रियों को अपने जान की पड़ी थी। कोई देवी-देवता को मनाता था तो कोई मिन्नतें मानता था और कोई मीलाद की सोचता था और कोई सत्यनारायण की कथा का ही अनुष्ठान करता था। इधर यह सब कुछ हो रहा था और उधर चिन्ता बर्लिन का न्यूज़ ८ बजे रात रेडियो के पास बैठा सुन रहा था। बर्लिन के रेडियो ने बतलाया—इस जंग का सारा दारोमदार ब्रिटेन पर है। इसके पहले वह ब्रिटेन का 'मैसेज' सुन चुका था कि वह दुनिया की आजादी के लिए लड़ाई में शामिल हुआ है। उसका चित्त द्विविधा में पड़ गया। वह कभी सोचता कि दुनिया का कैसा झमेला है ? छोटे-छोटे राष्ट्रों के उदरस्थ करने का कैसा सभ्य तरीका काम में लाया जा रहा है। ऐसे समय में यदि महात्मा का सिद्धान्त सर्वव्यापक हो जाता, तो सर्वत्र शान्ति विराजती दिखलाई पड़ती। निरस्त्रीकरण की योजना आज रद्दी की टोकरी में पड़ चुकी है। कोई पूछने वाला नहीं है। बात यह है कि स्वार्थ हमारा पिंड नहीं छोड़ता है। नहीं तो यह सब झंझट क्यों पैदा होती ? विज्ञान संहारकारी न बन कर हितकारी बन जाता। मगर नहीं, यह कैसे हो सकता है ?

ईश्वर की सृष्टि देखते-देखते लय होती जा रही है। लाखों की सम्पत्ति समुद्र के पेट में समाई जा रही है। कुछ समझ में नहीं आता।

इसी उधेड़बुन में पड़ा-पड़ा वह बम्बई बन्दरगाह के करीब पहुँच गया। उसे बन्दरगाह का दीप-गृह दूर से ही दिखलाई पड़ने लगा। उसने

अपना भविष्य का कार्य-क्रम भी निश्चय कर लिया। जहाज जटी के किनारे से टकराया और तत्काल ज्वार के साथ बन्दरगाह में लंगर डाले दिखलाई पड़ने लगा। कुलियों ने सामान उतारा, सभी मुसाफ़िर उतरने लगे।

चिन्ता एक अपार चिन्ता सिर पर लिये जटी पर उतरा। वहाँ से सीधे घोड़ा-गाड़ी में बैठकर विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन की ओर चल पड़ा।

इसे बनारस कमिश्नरी में फ़र्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट बनने के लिए टेलीग्राम के द्वारा जहाज पर ही अपाइंटमेंट लेटर मिल चुका था कि अपनी जगह का चार्ज लेकर तब घर चला जावेगा। उसने कलकत्ता मेल से रवाना होने के पहले ही अपने पिता एवं उमानाथ को टेलीग्राम कर दिया कि—"मैं आ रहा हूँ; बनारस में चार्ज लेकर तब घर और छावनी पर पहुँचूँगा।"

विलायत की रवानगी के समय यहाँ के स्टेशन और रेलमार्ग जो सुहाने और रम्य-स्थल से दिखलाई पड़ते थे। वही अब लौटते वक्त फीके और नीरस प्रतीत हो रहे हैं। चिन्ता ने सोचा और समझा, फिर निश्चय किया—बात यह है कि यहाँ न तो लन्दन जैसी ज़मीन के अन्दर चलने वाली रेलगाड़ियाँ है और न भूगर्भ में छिपे स्टेशन ही। एक पटरी की गाड़ियाँ भी नहीं। सारा कारोबार वहाँ ऊपर होता है और नीचे पृथ्वी का कलेजा दहलाती, उसे चीरती गाड़ियाँ दौड़ी चली जाती हैं।

और यहाँ जैसा वहाँ इंजिनों का धुआँ वायुमंडल को दूषित नहीं कर पाता। यहाँ बम्बई शहर में ट्रामवे, फिर कुछ दूर बिजली से चलने वाली गाड़ियाँ, फिर वही भक-भक धुआँ फेंकने वाला कोयले और भाप की शक्ति से चलने वाला इंजिन। यहाँ तीसरे दर्जे के मुसाफिर बोराबन्दी करके गाड़ी के डिब्बों में ठूँस दिये जाते हैं। जो पहले गाड़ी में चढ़ गया, वह उसे अपना मौरूसी हक्क समझ लेता है। दूसरा चाहे मीलों दूरी खड़े-खड़े तै करे लेकिन हम जो लेट गये सो लेट गये। विदेशों की तरह यहाँ रात और दिन की अलग-अलग गाड़ियाँ भी नहीं चलतीं।

इसके विपरीत चिन्ता को इंगलैंड और विदेशों की शील और सभ्यता का ध्यान हो आता। कोई गाड़ी में बैठा है, यदि उसके पास कोई सभ्य महिला पहुँची न कि वह उठ खड़ा हुआ। टिकटों के लेने में जो यहाँ भेड़िया-धसान होती है वह विदेशों में नहीं। वहाँ टिकटों की भी ड्रिल होती है; क्रमपूर्वक सब टिकट लेंगे। यहाँ तो एक साथ दस-बीस हाथ खिड़की में साथ ही मौजूद मिलेंगे। टिकट लेकर एक के पास इकट्ठे रख दिये जाते हैं। इस तरह प्रायः टिकट गायब होते देखे गये हैं। इसी भीड़ में उचक्कों और जेब-कटों की बन आती है। मगर दूसरे देशों में ऐसा बहुत कम होता है; वहाँ एक छोटा बच्चा भी टिकट लेता है और अपना उत्तरदायित्व वह स्वयं सँभालता और समझता है। चिन्ता यही सब सोचता-विचारता आगे बढ़ता गया। हवा के ठंडे झोंकों से नींद आ गई। फिर चुनार के करीब आकर भगवती भागीरथी का दर्शन दूर से ही

करके जागा। तब तक स्टेशन मुगलसराय, पुकारते कुली एक कतार में खड़े दिखलाई पड़ने लगे।

मुगलसराय में गाड़ी से उतर कर दो घंटे तक वह बनारस जाने वाली गाड़ी का इन्तज़ार करता रहा। लोकल ट्रेनों के बन्द हो जाने से बनारस आने-जाने वाले मुसाफिरों की कठिनाई और अधिक बढ़ गई थी। खैर, ज्यों-त्यों करके सुबह के चार बजे। गाड़ी तैयार होकर प्लेटफार्म पर लगी। उसने अपने दिल में सोचा, यदि बाम्बे मेल मुसाफिरों का कहा मान कर मुगलसराय से इलाहाबाद होकर आती जाती; तो अब तक मैं कभी का कैंट स्टेशन पर उतर गया होता। लेकिन क्या कहूँ रेल के अधिकारियों की सूझ को। खैर कुली ने फर्स्ट क्लास में ले जाकर सामान रखा। चिन्ता वहाँ जाकर बैठ गया। कुलियों को उसने मुनासिब मजदूरी दी। फिर भी वह खीस निकाले—बाबू साहब कहते वहीं डटे रहे। देहाती मुसाफिरों के साथ दिखलाई जाने वाली इनकी उद्दण्डता यहाँ दीनता में बदली दिखलाई पड़ती थी। उसने सोचा—हमारी मशीन का सारा ढाँचा ही सिर से पैर तक खराब हो गया है। उसमें मोरचा लग गया है। कहीं आज ऐसा लन्दन में होता तो ऐसा करने पर उन्हें अपमी ड्यूटी और मजदूरी से हाथ धोना पड़ता। मगर यहाँ क्या इसी में शान है। खैर, एक एकन्नी और लेकर वे वहाँ से हटे। इञ्जिन गाड़ी में जोतकर ड्राइवर सीटी दे रहा है। गार्ड और टी० टी० आई० हाथ में चाय का कप लिए जल्दी-जल्दी जलती चाय पीते जाते और गाड़ी की तरफ बढ़ते आ रहे हैं।

जेब में से पैसा निकालते-निकालते गाड़ी चल देती है; सींखचा पकड़ कर गाड़ी में चढ़ते हैं—"पैसा दूसरे दिन मिलेगा! ओ मैन, सुना!"

चाय वाला अपना-सा मुँह लिए खड़ा रह जाता है और अपना भाग सराहता है कि कप फूटने से बाल बाल बचा।

दो ही स्टेशन के बाद चिन्ता बनारस कैंट स्टेशन पर उतरा। कुलियों ने सामान उतारा। वह टिकट फाटक पर देकर बाहर एक कार के पास आकर खड़ा हो गया। सामान उसमें रखा गया। फिर वहाँ से वह अपनी कोठी की तरफ़ चला। दिन के आठ बजे का टाइम, कोठी पर पहुँचने से मालूम हुआ कि कोठी किराये पर देकर बाबूजी अब स्थायी रूप से छावनी में ही रहने लगे हैं। उसे किसी आदमी के स्टेशन पर न आने की चिन्ता मिट गई। तार देर से मिला होगा। डाक से रनपुरा में पहुँचेगा। सम्भव है कि वह अब तक पहुँचा भी न हो। मुहल्लें के लड़कों ने तो चिन्ता को पहिचान नहीं पाया। हाँ, बड़े-बूढ़ों और सेठजी के मिलने-जुलने वालों ने चिन्ता विलायत से साहब बन कर आ गया, कहते हुए इसे घेर लिया। इसने सबको दण्ड-प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। इसे यहाँ की प्राचीन सभ्यता के संस्मरण ने प्रेम विभोर कर दिया। किराएदार भलामानुस था। उसने झटपट एक कमरा चिन्ता के लिए खाली करा दिया और कुछेक जरूरी सामान कुर्सी, पलंग और मेज आदि रखवा दिया। अपना नौकर भी उसकी खिदमत के लिए तैनात कर दिया।

चिन्ता ने कपड़े उतारे, हाथ-मुँह धोया, नहाया, हजामत बनाई, फिर कुछ जलपान करने के बाद घड़ी में देखा तो १० बजने जा रहे थे। वह सीधे उसी कार से ज़िला मजिस्ट्रेट के बँगले पर पहुँचा। साहब अंग्रेज़ था; 'गुडमार्निङ्ग' करने के बाद उसने चिन्ता से परिचय पूछा। उसने अपना अपाइंटमेंट लेटर मेज़ पर रख दिया। साहब बिना कुछ कहे-सुने उसी कार में बैठा। मोटर कचहरी पहुँच। चिन्ता ने चार्ज लिया और अपना काम आरम्भ किया। कारवाला किराया लेकर साहब को उनके बँगले पर पहुँचाकर अपने घर गया।

दूसरे दिन रविवार का दिन पड़ता था। उसने सोचा, कल छावनी जा कर सारी व्यवस्था देख आऊँ। फिर उसे इस बात का ध्यान आया कि रविवार की छुट्टी लंदन में भी और यहाँ भी। कैसी साम्राज्यवादी छाप! हमें तो पूर्णिमा,. अमावस्या एवं एकादशी का न सही, काम के अवसरों पर छुट्टियाँ मिलतीं तो हम उसका अच्छा-सा उपयोग कर पाते। मगर यह तो सिर्फ गप औरं मजाक में ही कट जाता है। कुछ करते धरते नहीं बन पड़ता। यहाँ तो राष्ट्रीय अवकाशों का ही महत्व अधिक होता, मगर किया क्या जाए? स्कूल आर कालेजों में छुट्टियाँ हमें बालपन की मिठाइयों से भी अधिक प्रिय हुआ करती हैं और बड़े हो जाने पर भी वह चसका नहीं जाता।

अब उसे रह-रह कर अरुणिमा याद आने लगी, अखिलेश का सद्भाव उसे उद्वेलित करने लगा; कभी कामिनी सामने आकर खड़ी प्रतीत होती।

उसे पश्चात्ताप होता और वह एकाएक कह उठता, "यही जीवन की सबसे बड़ी दहकती अँगीठी शरीर को तपा रही है। उसका भविष्य मैंने अपने हाथों बिगाड़ा। ज़रूर मेरा कलुष उसमें जलता जा रहा है। अब भी वह एक प्रकार मेरा उपकार ही करती जा रही है। अब उसे अधिकार है कि वह मेरे उज्ज्वल भविष्य को निमिगच्छन्न कर दे। वह मुझे कोसती अवश्य होगी। अब भी उसके अन्तिम शब्द मेरे कानों से टकरा रहे हैं। क्लब के नौकर का यह कहना—"टूटे प्याले क्लब में कब मिलते हैं' मुझे रह-रह कर याद आ रहा है। क्या मैं इनसे अपना पिंड छुड़ा सकता हूँ ? कभी नहीं। इसका प्रतिकार मुझे अवश्य करना पड़ेगा। अगर यहाँ धोखा-धड़ी से बचा भी तो ईश्वर के दरबार में जो न्यायकारी है, वहाँ किस प्रकार छूट मिल सकती है।"

चिन्ता अपने दिल में सोचता, विलायत ही में मजे में था, यहाँ पहुँचते ही दिल में न जाने कौन-कौन-सी स्मृतियाँ उभड़ने लगीं। उनका भी अवसर है—समय है। इतने दिनों तक वे सुषुप्त अग्नि की तरह शान्त थीं। ढके-ढकाए आँवे की तरह भीतर ही भीतर वह बराबर सुलगती रहती थीं। कलेजा इन कुपरिणामों से काला हो गया होगा। हे ईश्वर ! इसका पश्चात्ताप मुझ से यहीं करा ले, नहीं तो सम्मुख मुझे लज्जा से सिर नीचा करना पड़ेगा। अरुणिमा से मेरा मिलना-जुलना भी लोगों ने बुरी निगाह से देखा होगा। उस भोली-भाली अरुणिमा का हृदय मेरे लिए क्या कहता होगा। दिल कह रहा है. इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा और देनी पड़ेगी इसकी सफाई। यह सोचकर वह बहुत ही उद्विग्न हो उठा—"कामिनी ! पहले तू

क्षमा कर दे; फिर यही क्षमा-याचना अरुणिमा से भी माफी दिलवायेगी। यही दोनों शक्तियाँ ईश्वर के सामने मेरी शानदार विजय कराने में सहायक और समर्थ होंगी।"

यही सोच-विचार कर घर की तरफ कदम उठाने का उसका साहस हुआ। कभी सोचता—कुछ दिनों अज्ञात ही रह कर मजिस्ट्रेटी करूँ, किन्तु उसी क्षण वह यह भी सोचता कि यह आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ न होगा। यही-भावनाएँ उसे रह-रह कर सत्य-स्वप्न दिखाती थीं। वह यह भी सोचता था कि जिस ईश्वर ने अपनी कृपा से मुझे इस पद पर पहुँचाया, वही इसकी मर्यादा की रक्षा भी करेगा। इस समय भारत का शासन-शकट कैसे संकट-काल से होकर गुजर रहा है—इसे ईश्वर ही जानता है। शासन की मशीन चलाने वाले हम जैसे मिस्त्रियों की क्या स्थिति होनी चाहिए, इसे हम निश्चय नहीं कर पा रहे हैं। एक ओर परा-धीन देश की पुकार, दूसरी ओर स्वामि-भक्ति का उद्‌गार। देखें, किस पक्ष की विजय होती है। इधर कर्त्तव्य और उधर प्रेम की दुनिया, किसे अपनाऊँ और किसे छोड़ूँ। यह भी इस समय निश्चय करने का अवसर नहीं है। समय आने पर स्वयं इसका निर्णय हृदय कर लेगा। ठीक भी है, जिस वस्तु की आवश्यकता अनिवार्य होगी उसी को हृदय अपनाएगा। यह तो एक ध्रुव सत्य और अटल-सी बात है। बस यही अन्तिम निर्णय मेरे दिल में बैठता है। अन्यथा कोई और उत्तम मार्ग मुझे दिखलाई नहीं पड़ता।

दसवाँ परिच्छेद

अरुणिमा कन्या-पाठशाला में बैठी लड़कियों को बता रही थी—"हमारी भारतीय संस्कृति भी पश्चिमी सभ्यता की अनुगामिनी बनती जा रही है। इसे अगर कोई शक्ति उधर जाने से बचा सकती है तो वह शक्ति नारी है। छोटे शिशुओं का पालन-पोषण, उनकी शिक्षा-दीक्षा उनका संस्कार इन्हीं पवित्र आत्माओं के द्वारा होता है। बालक का जितना अधिक संसर्ग स्त्री—माता से होता है; उतना पुरुष—पिता से नहीं, यह एक स्वाभाविक बात है। नारी का कोमल सुकुमार हृदय बालक के हठीले कामों से अकुलाता नहीं, उसे ठेस नहीं लगती, प्रत्युत वह आह्लादित ही होता है। बालक माता की आँखों का तारा है। मानव-स्वभाव की महान् शान्ति की प्र ीक नारी है। नारी से ही जगत की उत्पत्ति और लय पूर्व काल से ही होती चली आ रही है; किन्तु इस नारी-पुजारी देश में आए दिन उनका कितना घोर अपमान किया जा रहा है! मैं किसी को दोष नहीं देती, मगर इतना कहे बिना रहा भी नहीं जाता कि स्त्रियों के पतन का मुख्य कारण पुरुष ही है। जिस आवास में वह पला-पोसा उसे ही वह रोनी सूरत बनाए देखा करता है। उसकी तरफ फूटी आँखों भी नहीं देखता। किकर्त्तव्य विमूढ़ बना मतवाले सिंह की तरह चला जा रहा है।"

अरुणिमा के दिल का गुबार अच्छी तरह निकलने भी न पाया था कि उमानाथ टेलीग्राम लिये वहीं पहुँचे। कन्याओं ने अरुणिमा

को उठते देख कर अधेड़ उम्र वाले उमानाथ का उठ कर अभिवादन किया। बैठने का संकेत पाकर पुनः अपना स्वाध्याय करने लग गईं।

उमानाथ ने कहा—"देखो, यह टेलीग्राम कहाँ से आया है?"

अरुणिमा ने उसे हाथ में लिया और खोल कर पढ़ा—"चिन्ता ने बम्बई से भेजा है। वह आ रहे हैं। बनारस में मजिस्ट्रेटी का चार्ज लेकर छावनी में आयेंगे। सेठजी को भी खबर कर दीजिए और उनकी आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध भी।"

यह सब कुछ कहते हुए अरुणिमा के हृदय पर एक ऐसा थपेड़ा लगा कि अगर वह सँभल कर चारपाई पर न लेट जाती तो उसे अवश्य मूर्च्छा आ जाती। उमानाथ यहाँ से चले गये थे। थोड़ी देर के बाद अरुणिमा को होश आया उसने सोचा—मेरी बीमारी का पता यदि कहीं चिन्ता को लगा, तो उनका हृदय मेरी तरफ से क्या सोचेगा। यह सोच कर वह फिर अनमनी-सी हो गई। आज एक घंटे पहले ही लड़कियों से गर्बा (गुजराती नृत्य) कराकर उन्हें छुट्टी दे दी। दिल बहलाने की गरज से वह संन्यासिनी की कुटी की ओर बढ़ी। रोज की तरह आज उसका कदम क्यों उतावला नहीं उठ रहा है। रास्ता काँटों से भरा मालूम हो रहा है। बीच-बीच में लोमड़ी रास्ता काट जाती है। उल्लू दिन को ही क्यों बोलने लग गया है? वन के मृग-शावक आज क्यों उदास मन होकर बैठे हैं? ताल

की चिड़ियों का चहचहाना भी कम हो चला है। सान्ध्य दीपक के प्रकाशित होने की बेला होगई है। फिर भी आज कुटी तिमिराच्छन्न है! लक्षण अच्छे दिखलाई नहीं पड़ रहे हैं। चली थी संन्यासिनी से मिल कर दिल बहलाने, मगर यहाँ की स्थिति में अन्तर पड़ा दिखलाई देता है। उनकी पाली प्यारी बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करके रोती इधर-उधर दौड़ती दिखलाई दे रही है। इधर देखा, उधर झांका; मगर कहीं संन्यासिनी हो, तब तो पता चले! अरुणिमा के मुँह से अनायास निकल पड़ा—सारा गुड़-गोबर हो गया। वह कहाँ चली गई। गाँव वाले सुनेंगे, तो साधु-समाज पर लांछन का एक और गहरा नमदा गाँठ देंगे। कहीं यह अवस्था संन्यास की हुआ करती है? यह तो पहले से ही कहा जाता था, अब तो उसकी पुष्टि का लोगों को और अच्छा अवसर मिला। मन-माँगी मुराद मिली। इसी लिए उसका दिल धड़कता था। वह इसी अमंगल की सूचना डंके की चोट दे रहा था। विभिन्न प्रकार के अपशकुन हो रहे थे। इधर-उधर ढूँढने पर उसे कागज का एक टुकड़ा वहीं पड़ा मिला। उसे खोल कर पढ़ा। उसमें लिखा था—

"बहिन अरुणिमा, एक आवश्यक कार्यवश मैं बाहर जा रही हूँ। मेरे इस तरह चले जाने पर सम्भव है कि बहुत बड़ी फबतियाँ ली जाएँगी। सम्भव है तुम्हें भी अपमानित होना पड़े। मगर तुम अपना काम जारी रखना। हताश होकर निरुद्यमा न बन जाना। बराबर पुरुषार्थ किये चलना। शक्ति-सचय का प्रधान मार्ग यही है।"

उसने आगे और पढ़ा—"अखिलेश इस समय जेल न गया होता

तो वह मेरा काम आसानी से कर देता। उसका अभाव मुझे इस समय अधिक खल रहा है। खैर, देखना, समय और अवसर आते ही मैं तुम्हारी सेवा के लिए आ जाऊँगी। अभी समय रहते मुझे छिप कर ही काम करना है। जमाना और मेरे कार्य अपने आप मुझे तुम्हारे तथा औरों के सम्पर्क में ला देंगे। मैं कौन हूँ, यह बताने की जरूरत नहीं। मेरा पहिचानने वाला अब तक यहाँ कोई न था, इसीलिए मैं अब तक यहाँ थी। जब मौका आएगा, मैं फिर आ जाऊँगी। देश और जाति के सुधार एवं उत्थान के लिए इससे भी कठिन और भयंकर आपदाओं को झेलना और उनका सामना करना पड़ेगा। तुम बराबर अपने इस काम में अग्रसर होती रहना। देश-सेविकाओं की कवायद, परेड और सामूहिक प्रार्थना का कार्य भी अब तुम्हें ही सम्पादित करना पड़ेगा।—तुम्हारी वही संन्यासिनी।' इसे अरुणिमा ने सकरुण पढ़ा। उसकी आँखें डबडबा आईं।

इस पहेली को अरुणिमा जितना ही समझने की कोशिश करती, उसकी गुत्थी उतनी ही और उलझती जाती थी। वह कभी सोचती—संन्यासिनी कौन थी? तो स्वयं वह एक पहेली बन जाती। नित्य प्रति के कार्यों का आधिक्य; तिस पर संन्यासिनी का महान और कठोर आदेश! ईश्वर सहायक है। सब कुछ होता रहेगा। "अब तक मेरा पहिचानने वाला यहाँ कोई न था।" इसको वह बार-बार पढ़ती और ताजी घटना से इसका सम्बन्ध जोड़ती, तो उसे तत्काल यह ज्ञात हो जाता कि इस टेलीग्राम का तो उसे कुछ पता न था फिर इससे उसका क्या

सम्बन्ध ? गृहस्थों की गृहस्थी से संन्यासिनी को क्या मतलब, क्या सरोकार ? किसी के आने-जाने में क्या रुकावट ? कुछ समझ में नहीं आता। खैर इस दिन की सामूहिक प्रार्थना कराने और मंदिर में तेल-बत्ती का प्रबन्ध हो जाने पर वह एक दो को वहाँ तैनात कर घर आई। उसके यहाँ पहुँचने के पहले ही संन्यासिनी के अचानक गायब की खबर सारे गाँव में बिजली की तरह फैल चुकी थी।

कोई कहता—'यह अवस्था संन्यासी की हो सकती है ? जैसे आज-कल बहुत से बहुरूपिये भेष बना कर इधर-उधर घूमते और दुनिया को ठगा करते हैं। उन्हीं में से सम्भव है, यह भी रही हो। पुरोहित तो अब एक प्रकार से राज-पुरोहित हो चले थे। उनकी जबान में लगाम पड़ चुकी थी। मगर वे अपनी शैतानी हरकत से क्यों बाज आने लगे। उन्होंने कह ही तो डाला—"इन काँग्रेसियों और आजकल के पढ़े-लिखे अपटूडेट छोकरे छोकरियों का कुछ ठिकाना नहीं। कोई साधू बनता है, कोई संन्यासी और कोई संन्यासिनी। कोई जेल जाता है, देश-भक्त बनने और आगामी काँग्रेस-राज्य में सूबेदार बनने के लिये। कोई देश-सेविका का ढोंग बना कर ग्रामीण, अपढ़ और निरीह बे-जबान जनता को ठग रहा है। कोई अध्यापिका बन कर निरक्षरता की प्रति-मूर्ति स्त्रियों को साक्षरता की देवी, साक्षात् सरस्वती बनाने जा रहा है। दुनिया उलटती जा रही है !" सामने से बलजोर को आता देख कर फिर पाठ करने मे तन्मय हो गये। समीप आने पर कहने लगे—"सुना कुछ, या अब भी कान में तेल डाले सारा कुकृत्य देख रहे हो ! अब

बताओ, मैं कहाँ तक दोषी हूँ !" पुरोहित ने इतना कह कर दुर्गा-सप्त-शती की पोथी अलग रख दी।

बलजोर ने नीचे सिर कर के कहा—"हाँ समझ चुका, आपको भी और दुनिया को भी।"

पुरोहित ने कहा—"सबको समझ चुकने के पहले तुम मुझको ही समझा करते हो। यथार्थता पर परदा डालना तुम्हारा ही काम है। संन्यासिनी अपना टंट-घंट लेकर चम्पत हो गई न ?"

बलजोर ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"नहीं। फिर आपका पुराना प्रलाप आरम्भ हो गया। बिना सोचे-समझे किसी पर अनायास लांछन लगाना ठीक नहीं हुआ करता। आपको पता नहीं वह केवल अपना शरीर लेकर यहाँ से गई है।"

पुरोहित ने बीच ही में बात काट कर कहा—"आज इधर कहाँ भूल पड़े बलजोर !"

फिर बलजोर ने वार्ता का प्रसंग बदलते हुए कहा—"आज गाँव के जमींदार, आपके यजमान सेठजी का लड़का आने वाला है।"

पुरोहित ने कहा—"चिन्ता—वही—चिन्तामणि !"

बलजोर—"हाँ, वह विलायत पास होकर यहीं अपने ही जिले में मजिस्ट्रेट, फर्स्ट क्लास पावर का बना है। चार्ज लेकर वह यहाँ आ रहा है।'

उमानाथ छावनी में से निकल कर बलजोर को बैठने का संकेत करते हुए कुछ काम से आगे बढ़े, तब तक चिन्ता आ गया।

चिन्ता ने छावनी में कदम रखते ही अपने पिता के पैर छूए, उमानाथ को नमस्कार किया और चन्दनधारी १११ मार्का वाले पुरोहित को दंड-प्रणाम ! अन्य उपस्थित जनों को यथा-योग्य अभिवादन करके बैठ गया।

सेठजी ने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा—"लो, अब अपनी सम्पदा इसका प्रबन्ध करो। अब तुम्हारी धरोहर तुम्हें देकर मैं विदा लेना चाहता हूँ। तुम्हें मैंने इस योग्य ईश्वर की दया से कर दिया कि अपना सब करो-धरो। मजिस्ट्रेटी भी करो और यह सब भी देखो। उमानाथ की और हमारी खूब निभी, एक सच्चे जीवन संगी की तरह इन्होंने हमारा साथ दिया। लोग कहते थे कि चिन्ता अब देशी न रह कर विलायती बन गया होगा। मगर उनकी धारणाएँ निर्मूल निकलीं। हमारा चिन्ता सादी चाल वाला हिन्दुस्तानी ही बना रहा।'

उमानाथ ने कहा—"ठीक कह रहे हो सेठजी, सभी उस रंग में थोड़े ही रँग जाते हैं। फिर आप जैसे प्रजावत्सल नर रत्न का अपार स्नेह भी तो कुछ महत्व रखता है।"

चिन्ता गम्भीर मुद्रा में मुस्कराते हुए बोला—"पिता जी और उमानाथ ! आपका सन्देह दूर हो गया। मैं एक विदेशी संस्कृति के बिलकुल सम्पर्क में रह कर आया हूँ परन्तु उसे भारतीयता का बाना

पहिना कर देश के सामने रख सकूँगा कि नहीं यही प्रश्न विचारणीय है। इतना सब कुछ होते हुए भी मैं आप लोगों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आपका यह चिन्ता आप लोगों की चिन्ता का कारण कभी न बनेगा। इस नश्वर शरीर से मनुष्य जाति का जहाँ तक हो सकेगा, कल्याण ही होगा, उपकार ही होगा—अपकार नहीं।'

अरुणिमा छावनी के एक कोने में खड़ी होकर सारी बातें सुनती रही। वह ऐसी जगह खड़ी थी कि जहाँ से वह चिन्ता को अच्छी तरह देख सकती थी और चिन्ता भी कनखियों से उसे बराबर अपलक देखता जाता वे एक दूसरे से बहुत दिनों के बाद साक्षात्कार कर रहे थे। यही कारण था कि वे परस्पर एक दूसरे को देख कर अघाते नहीं थे। पुरानी बातें एक-एक करके सामने आतीं और नवीन दृश्य की भूमिका बन कर अन्तर्हित हो जाती थीं। मन में चाव था मिलने का, प्रेम की बातें कर के सुमनांजलि देने का।

इतना सब होते संध्या हो गई। मजलिस उठी। सब अपने-अपने घर गये। विलायती साहब की वापसी के उपलक्ष्य में एक दिन नहीं, बल्कि आज ही छोटे बच्चों को मिठाइयाँ मिलीं। उन्होंने मुँह मीठा कराने वाले को सराहा और ऊँचा पद पाने की इच्छा प्रगट की। बड़े-बूढ़ों को पक्की दावत दी गई। पुरोहित ने बनाया और सब ने खाया। बहुत रात्रि गये तक विलायत की चर्चा चलती रही।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

चिन्ता ने सोचा—माता सुखरानी एवं अरुणिमा से मिल कर तब सुबह की गाड़ी से बनारस जाऊँगा। उसे एक संन्यासिनी के यहाँ आने और उसके अचानक गायब होने की सूचना उमानाथ से मिल चुकी थी। उमानाथ ने अरुणिमा की बीमारी का भी हाल बताया और साथ ही उसके दोषारोप का सारा किस्सा भी सुनाया था।

चिन्ता ने कहा—"यही पुरोहित हैं, जो आज राज-पंडित बने हुए हैं। इन्हें उसी काम के परिणाम-स्वरूप क्या यह पुरस्कार दिया गया है?"

उमानाथ—"नहीं, इनकी जीविका चलाने की गरज से, इनके छोटे बच्चों और पुरोहितानी के खयाल से, ऐसा किया गया है। इनके लिए ऐसा नहीं किया गया है। अरुणिमा आप से यह सब बातें बताएगी।"

चिन्ता कदम बढ़ाए उमानाथ के मकान की ओर चला जा रहा था। उसका दिल रह-रह कर कहता--सुखरानी मुझे उपेक्षा की दृष्टि से देखेगी; अरुणिमा मुझे एक शहरी के अलावा अब विलायती भी समझेगी। मुझे संन्यासिनी की बात पहले पूछनी पड़ेगी। वह इन बातों को सोचता हुआ अरुणिमा के घर पहुँचा।

अरुणिमा मानों पहले से ही उसका स्वागत करने के लिए तैयार बैठी थी। वह कभी सोचती, मेरे घर एक विलायती साहब आ रहा है। एक मजिस्ट्रेट। वह यहाँ आकर क्या पाएगा ? देहाती दुनिया उसकी आवभगत करने में कहाँ तक समर्थ होगी ? वह यही सोचती अपने आँगन में बैठी थी।

सुखरानी ने अरुणिमा से कहा –"बेटी अरुणिमा ! बाहर चिन्ता खड़ा है, जाकर उसको बैठाओ !"

अरुणिमा ने कहा –"तुम चलो, मैं आती हूँ।"

सुखरानी ने एक चारपाई जिस पर सूती कालीन पड़ी थी उस पर चिन्ता को बैठाया। चिन्ता ने यहाँ की सादगी और विलायत की बनावट का मुकाबिला किया। तब तक एक छोटी-सी तश्तरी में पान का बीड़ा, इलायची, लौंग, सुरती और छालियाँ रखे अरुणिमा निकली। चिन्ता ने प्रेम-पूर्वक अरुणिमा को सामने तश्तरी रखते और सादर नमस्कार करते देखा और पान की गिलौरियाँ उठा कर मुँह में रखीं। सुखरानी वहाँ से किसी काम का बहाना लेकर हट गईं।

चिन्ता ने अरुणिमा से कहा--"भाई अखिलेश इस समय कहाँ है ?"

अरुणिमा की आँखें डबडबा आईं, उसने कहा--"उनको तो साल भर हो जाते हैं, जेल की चहारदीवारी के अन्दर गये। अब तक

तो वह भी किसी सरकारी पद पर आसीन होते, लेकिन देश-सेवा से प्रेरित होकर उस ओर उन्मुख हुए और सरकारी पद की उपेक्षा की जहाँ तक मेरा विश्वास है, उन्होंने यह उचित ही किया।"

चिन्ता ने हँस कर कहा - "तुम सरकार विरोधी बातें किसके सामने कह रही हो, यह मालूम है ? एक मजिस्ट्रेट के समक्ष ऐसी बातें कह कर, क्या तुम भी एक प्रकार का खुला विद्रोह कर रही हो, अरुणिमा ?"

अरुणिमा ने अदम्य उत्साह से कहा—"निस्सन्देह ! मैं इसी लिए तो कह रही हूँ। एक अपने घर के मजिस्ट्रेट के सामने। मेरा मुँह आप बन्द कर दे सकते हैं, लेकिन दिल के अन्दर की जलती और सुलगती भट्ठी को तो नहीं बुझा सकते। हाँ, इतना कहे बिना मैं नहीं रह सकती कि निकट भविष्य में यही अरुणिमा भी राजनीति में पदार्पण करेगी। तब आप देखेंगे कि कौन-सी शक्ति मुझे रोकती है ! जिसका प्यारा भाई जेल में हो, रक्षा-बन्धन योंही बीता हो, उसकी बहिन के लिए जेल के बाहर जगह कहाँ ?"

चिन्ता के मुँह से एकदम आह निकल गई। उसकी आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया। वह कहने लगा—"यह तो मुझे शोभा नहीं देता कि मेरा चिर जीवन-सगी जेल में रहे और मैं बाहर रह कर मजिस्ट्रेटी करूँ। उस राज-शक्ति की मशीन का एक पुरजा बनूँ, जिसने अपने बल से शासन-सूत्र सँभाल रखा हो। खैर, देखा जायेगा। वह दिन दूर नहीं, जब कि हम और अखिलेश दोनों एक दूसरे के गले मिलेंगे।"

अरुणिमा ने कहा--"यहाँ एक संन्यासिनी आई थीं। उनके आगमन से गाँव के जीवन में एक नवीन चहल-पहल सी हो चली थी। देश-सेविकाएँ भी काफी तादाद में तैयार हो गईं। उनकी कवायद-परेड अहिंसा-पूर्ण रीति से चलती रही। मगर उन्होंने हमें इस ओर अथाह सागर में डुबकियाँ लगाते छोड़, न जाने कहाँ के लिए प्रस्थान किया।"

चिन्ता ने कहा—"ऐसा कब हुआ?"

अरुणिमा बोली—"जिस दिन आपके आगमन का टेलीग्राम यहाँ मिला, ठीक उसी दिन उसके दो घंटे पहले एक पत्र कुटी में रखकर अपना रास्ता लिया।"

"क्या वह पत्र मैं देख सकता हूँ?"

"अवश्य। आप उसे देखिए।" अरुणिमा ने चिन्ता को पत्र निकाल कर देते हुए कहा।

चिन्ता पत्र पढ़ते हुए अक्षरों की बनावट और उसकी लिखावट, गौर से देखता जाता था। पत्र पढ़ते-पढ़ते वह अचानक कह उठा—"यह जिस हाथ से लिखा गया है, वह मेरा जाना-पहिचाना मालूम देता है। इतना कह कर चुप हो गया। फिर कहने लगा—"कुछ बता सकती हो, संन्यासिनी के विषय में?"

अरुणिमा—"हाँ, एकहरे बदन की मझोले कदवाली अर्द्ध-गौरवर्ण की, दमकते चेहरे और घुँघराले बालों वाली एक स्त्री, और तो कोई खास बात नहीं थी।"

चिन्ता—"तुम्हें अब घबराने की आवश्यकता नहीं, मैं आ गया हूँ। अखिलेश भी आवेगा और संन्यासिनी का भी पता लगेगा। हम लोगों का एक अनोखा क्षेत्र बनेगा। तुम धीरज रखो, ईश्वर सब कुछ करने वाला है। अभी कुछ विलम्ब अवश्य है। मैं तो कल सुबह की गाड़ी से चला जाऊँगा। तुम अपना काम जारी रखना, यही हमारे आगामी कार्यक्रम की भूमिका का काम देगा। मैं कल ही जाकर बनारस सेंट्रल जेल में अखिलेश से मिलने का प्रयत्न करूँगा।"

अरुणिमा—"आप ही जैसी देव-मूर्त्ति का भरोसा हम लोगों को है या दूसरा कोई आधार है? माता चन्द दिनों की मेहमान है, पिता के पैर डगमगा ही रहे हैं और भाई जेल में। संसार में अब मेरा कौन है? यही सोच-सोच कर जी कभी-कभी ऊब उठता है। नारी जाति की स्वाभाविक दुर्बलता मौका पा कर दिल दहला देती है। आप से क्या छिपाना है। आपको लगा कर पुरोहित सरजूप्रसाद ने क्या-क्या नहीं कहा और क्या-क्या नहीं किया। लेकिन पिता की सहिष्णुता देखिए, उन्हें राज-पुरोहित बनवाया है।"

चिन्ता ने उसे बीच ही में रोक कर कहा—"पुराने आदमियों में उसकी मात्रा अधिक होती है। उन्हें मानापमान का बदला लेने के बदले दया करना ही आता है। यही आर्य संस्कृति है, लेकिन मानव-स्वभाव इसे सहन नहीं कर पाता। हाँ, अगर सहन कर जाए, और विष के घूँट की तरह उसे पी जाए, तो परिणाम सुमधुर ही निकले। हमारे देश में नवयुवक और

नवयुवतियाँ इस प्रकार समाज की कुप्रवृत्ति का निशाना बना करती हैं, मगर पाश्चात्य सभ्यता इसे एक प्रकार की तहज़ीब समझती है। वहाँ स्त्रियाँ समान-पद का दावा रखती हैं। यहाँ दासी और बच्चा पैदा करने वाली मशीन से अधिक अपना कोई महत्व नहीं रखतीं। गाली-गलौज और मार-पीट से परदे के अन्दर से घुल-घुल कर पीला आम बनने वाली हैं। कितने नामधारी घर ही से भ्रूणहत्या कराते हैं। समाज में उच्च आसन न छूटे, इस खयाल से उन्हें शहरों में लेजाकर असहाय अवस्था में छोड़ आते हैं। बड़ीं बड़े-बड़ों की बहू-बेटियाँ वेश्या-वृत्ति से अपना पेट पालने के लिए बाध्य हुआ करती हैं। इस प्रकार समाज धर्म की ओट और आड़ में क्या नहीं करता? यह सब विलायतों में इस ढंग से नहीं हुआ करता। स्त्रियाँ समाज के बीच इस तरह तिरस्कृत नहीं की जातीं।

अरुणिमा ने आगे कहना आरम्भ किया—"यह तो एक विभीषिका के अतिरिक्त और कुछ नहीं। आखिरकार सब की भी कोई सीमा होती है। मैं तो समझती हूँ कि इसका विस्फोट सारे देश को ले डूबेगा।"

चिन्ता ने कहा—"ठीक तो है, यही तो होने जा रहा है। मैंने एक बात का अनुभव विलायत जाकर यही किया कि जब तक देश का नारी-समाज इस अधोगति से न निकलेगा, तब तक देश का उद्धार नहीं हो सकता। स्त्रियाँ काम-वासना की तृप्ति का साधन नहीं हैं। प्रत्युत इससे आगे बढ़ कर उनका स्थान समाज में बहुत ऊँचा है।

देश को इन्हें समझना होगा और इसका प्रायश्चित भी करना होगा। स्वतंत्रता का उपभोग करने वाली जातियाँ हमारी ओर उँगली उठाकर हँसतीं और हमें कदम-कदम पर अपमानित करती हैं। किन्तु देश की यह प्राचीन रूढ़ि परम्परा न जाने कब हमारा पिंड छोड़ेगी। रंग-ढंग से तो ज्ञात होता है कि आजकल पश्चिमी सभ्यता में रँगी हमारी अधिकांश बहिनें भी ऊँची एँडी की जूतियाँ पहिनने लगी हैं। चश्मा और छड़ी और अंग्रेजी फैशन की छतरी उनकी भी आराध्य वस्तु बनने जा रही है। ये लक्षण बुरे हैं और वे हमें वर्त्तमान से और पीछे ढकेल देंगे। इसका आभास हमें मिल रहा है। माता सीता, सती द्रौपदी, महारानी कुन्ती का आदर्श जब तक हमारे सामने न रहेगा, तब तक हम घर के होंगे न घाट के। संसार में सती उर्मिला और लक्ष्मण का दाम्पत्य-जीवन आदर्श रूप है। हमारी हिन्दू संस्कृति का जाज्वल्यमान उदाहरण है। मैं अभी तक अविवाहित हूँ। दोस्त और संगी-साथी ऐसा नहीं समझते, वे कहते हैं और मज़ाक उड़ाते हैं कि एक विलायत से लौटा हुआ आदमी कब तक ब्रह्मचारी रह सकता है। किन्तु उन्हें पता नहीं, मेरे हृदय ने क्या संकल्प कर रखा है। अखिलेश की हिदायतें वहाँ पग-पग पर मुझे स्मरण होती थीं और तुम्हारा सहज-स्नेह, विशुद्ध मिलन क्या इसमें कम सहायक हुए हैं? मगर अब........"

अरुणिमा ने बात-चीत का रुख और उसका प्रवाह दूसरी ओर जाते देख कर कहा—"संसार में लोग प्रेम को एक प्रकार की ईश्वरी

देन और दैवी-शक्ति समझा करते हैं। मैं तो समझती हूँ कि यह दैवी-शक्ति अनायास ही हमें अथवा और किसी को नहीं पकड़ा करती। क्रमशः उसका अंकुर जमता है, सद्भावनाओं के जल से उसे सींचा जाता और अनुकूल जल-वायु पाकर वह बढ़ता और फलता-फूलता है। फिर दो मनों के संयोग से कली कुसुम का रूप पाती है। यह तो सब कुछ आपने कह डाला है, किन्तु संसार का प्रेम एक धोखा-धड़ी के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वासनाओं की उमंग समाप्त होते ही वह प्रेम एक भार-सा प्रतीत होने लगता है कुछ समाज का डर, कुछ आत्मा की कमज़ोरी और कुछ जातिगत भावनाएँ प्रेम की सच्ची पूजा नहीं करने देते। यहाँ के लोग आपको और मुझे दो नहीं समझते। मगर मैं आपको और आप मुझे क्या समझते हैं, इसका पता हम दोनों में से किसी को भी नहीं है। अगर माँ का बस चलता तो अब तक वह मुझे कभी की माता बना चुकी होतीं, पर मैं तो गुलाम माता बनने की अपेक्षा कुँआरी रह कर अपमान का विष पीते रहना अच्छा समझती हूँ। मुझे यह मालूम है कि मीरा को किसने क्या नहीं किया और क्या नहीं कहा, तो मेरे जैसी साधारण-सी स्त्री को तो लोगों ने अभी कुछ नहीं कहा। संन्यासिनी के प्रति भी अब लोगों का ख्याल वही है। उन्हें भी लोग धूर्त साधुओं की श्रेणी में गिनने लगे हैं। ऐसे दूषित वायु-मंडल में हम अपने को निराधार पा रहे हैं।"

चिन्ता ने अरुणिमा के साहस और अद्भुत प्रेम की सराहना मन ही मन करके कहा—"तुम जैसी आदर्श नारी ही देश का भला करेंगी!

समय आने पर हमारे स्नेह और संन्यासिनी का भेद, अखिलेश का बीच-बचाव आदि सब बातें एक-एक करके रंग-मंच पर आवेंगी और संसार उन्हें कुतूहल से देखेगा और एक नये संसार की रचना का सूत्रपात होगा। यही हमारा दिल हमें बता रहा है। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो और संशय को हृदय से निकाल बाहर फेंको। दुनिया को कहने दो। चाहे वह हमें पागल कह ले, दीवाना बना ले, हमें दोषी और अपराधी भी बना ले; लेकिन सर्वहितकारी जगदीश्वर हम दोनों का स्नेह देखता है। वही हमें अभीष्ट पर पहुँचाएगा। हृदय विशुद्ध हो तो परमात्मा का नाम लेकर अपने मार्ग पर अग्रसर होते चलना ही श्रेयस्कर होता है। संसार अपने भूत पर पछताएगा और हमारा तुम्हारा भविष्य उन्हें चकाचौंध में डाल देगा। उस वक्त हमारे विरोधी खुद पछताएँगे और कहेंगे कि हम गलती पर थे। अरुणिमा, अब मुझे विदा दो। कन्या-पाठशाला का काम जारी रखते हुये संन्यासिनी का भी कार्यक्रम पूरा करना। अब मैं जा रहा हूँ, जल्दी ही लौटूँगा।"

बारहवाँ परिच्छेद

अरुणिमा कन्या-पाठशाला में बैठी एक समाचार-पत्र पढ़ रही थी। मन में सोचती भी जाती थी कि अगले रविवार को ही आने के लिए कह गये थे, मगर आज तक न आये। मनुष्य सामने कुछ और होता है, और पीठ पीछे बिलकुल बदल जाया करता है। दुनिया के आईने में

उसका मुख-पृष्ठ और कुछ और पृष्ठ भाग कुछ और ढंग का दिखलाई पड़ता है। पिता जी को बीमार हुए आज दस दिन हो गये। हकीमों ने उपवास कराना ठीक समझा है। थोड़ा-सा उबाला पानी पीकर वे २४ घंटे लगातार चारपाई पर पड़े रहते हैं। माताजी भी उनकी बीमारी से सूख-सूख कर काँटा हुई जा रही हैं। रोग का कुछ पता नहीं चलता है। सेठ जी डाक्टर को भी लिवा लाये हैं। आले से उन्होंने देखा। कुछ अंग्रेजी नुसखा लिखा और अपनी फीस लेकर चलते बने। दवाई ग्रे कम्पनी से मँगाई गई। मगर अब तक कुछ फायदा नहीं मालूम पड़ा।

सुखरानी अपने पति के जीवन से निराश हो चुकी थी। उसे रह-रह कर अब पिछली बातें याद हो आतीं अरुणिमा किस घाट लगेगी। अखिलेश का क्या होगा? बुढ़ापे का रँड़ापा कैसे कटेगा? विपत्तियाँ एक विशाल, डरावनी मूर्ति बन कर उसके सामने आतीं और उसे विह्वल करके चली जातीं।

अरुणिमा अपनी माता को सांत्वना देती। वह कहती—"संसार में ईश्वर जो कुछ करता है, वह सब अच्छा ही करता है। अगर पिताजी हमारे बीच इतने ही दिनों के लिए रहने आए होंगे तो इन्हें कोई सांसारिक शक्ति रोकने में समर्थ न हो सकेगी। मेरे लिए आप चिन्ता न करें, अखिलेश मेरी खोज-खबर लेगा। संसार में स्त्री का एक मात्र यही कर्तव्य नहीं है कि वह माता ही बने।"

सुखरानी ने रोते हुए कहा--"बेटी ! अपनी वंश-परम्परा कायम रखना और कुल की वृद्धि करना किसे नहीं भाता ? इसी का रोना है और इसी का पीटना। हालाँकि इसमें हमारा ही स्वार्थ सन्निहित है। पति जब तक रहता है, स्त्री का भार सँभालता है, उसके न रहने पर यदि संतान सपूत हुई तो बुढ़ापा कट जाता है, नहीं तो जीना दूभर हो जाता है। तुम सब योग्य हो। तुमसे हमारी आशाएँ बहुत हैं। अखिलेश तो जीवन की परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका है। मरने के बाद हिन्दू धर्म-शास्त्र के अनुसार पिंड-दान का आसरा और सहारा हो ही गया है। निपूती तो मुझे कोई नहीं कह सकता। मुझे पूर्ण संतोष है कि अखिलेश और तुम अपने वंश का नाम न डुबाओगे। हाँ, एक बात मैं कहना भूल रही हूँ अखिलेश अपने पिता का दर्शन अन्त समय यदि कर लेता तो बहुत ठीक होता।"

"राजबन्दी पैरोल पर छूटा जरूर करते हैं; मगर नजरबन्दों के लिए यह नियम लागू होगा या नहीं यह मैं नहीं जानती।" अरुणिमा ने कहा। "मैं जाती हूँ, चिन्ता से मिल कर एक दरख्वास्त दे आती हूँ। प्रयत्न किया जावेगा। इस वक्त संन्यासिनी का अभाव मुझे खटक रहा है। विपत्तियों के बादल अचानक घिर कर कष्टदायक वर्षा किया चाहते हैं।"

अरुणिमा के चले जाने के बाद उमानाथ ने आँखें खोलीं। छाती पर हाथ रख कर धीरे से बोले--"पानी।" सुखरानी ने डबडबाई आँखों से

देखा और छोटे गिलास में पानी उँडेल कर पिलाया। दवाई की दूसरी खूराक देनी थी उसे भी दिया।

"अरुणिमा कहाँ गई ?" उमानाथ ने पूछा।

सुखरानी ने कहा--"अभी थोड़ी देर में वह आ रही है। कुछ काम से बाहर गई है।"

पंखा झलते-झलते सुखरानी को नींद आ गई। उसने स्वप्न में देखा कि संन्यासिनी आई हैं। झट-पट उमानाथ की नाड़ी देख कर कोई दवा अपने हाथों तैयार करके उन्हें दे रही हैं। उमानाथ उठ बैठते हैं। इतने में सुखरानी की भी आँखें खुल गईं। वह सोचने लगी कि अभी मैं क्या देख रही थी। और तो कुछ नहीं उमानाथ ज़रूर चारपाई पर बैठे उसे दिखाई पड़े।

उमानाथ ने कहा--"एक सती स्त्री अभी आई और मुझे दवा पिला कर चली गई है।"

सुखरानी अपने मन में कहने लगी—हो न हो, यह संन्यासिनी ही का काम है। वह पछता रही थी कि मुझे कहाँ से नींद आ गई और इन आँखों ने बड़ा धोखा दिया; अगर मैं जागती होती तो उनका पैर पकड़ कर अपनी दुःख-गाथा सुनाती और लाख कोशिश करने पर भी उन्हें न जाने देती।

अपने पति से पूछने लगी—"अब आपकी तबीयत कैसी है ? कुछ सँभलती सी तो जरूर दिखाई पड़ रही है।"

उमानाथ ने कहा--"सुधरती-सी जान पड़ती है, यदि यही हालत रही तो निकट भविष्य में मैं चलने-फिरने लगूँगा। गाय का थोड़ा सा दूध मिला करता तो ठीक होता।"

पास ही बैठे बलजोर ने कहा—"इसका प्रबन्ध आज ही हो जावेगा।"

वह दौड़ा-दौड़ा गया और अपनी दस दिन की ब्याई गाय और उसके बछड़े को अपने यहाँ से लाकर उमानाथ की सेवा में हाज़िर कर दिया।

सुखरानी ने कहा--"तुम्हारे घर अभी हाल ही में लड़का हुआ है, उसका पेट कैसे भरेगा ? मुझे मालूम हुआ है कि तुम्हारी घरवाली को दूध भी काफी नहीं होता।"

बलजोर बोला—"थोड़ा दूध यहाँ से चला जावेगा।"

उमानाथ ने बीच ही में बात काट कर कहा—"वहीं से मेरे लिए आता तो क्या कुछ हर्ज होता ?"

बलजोर ने इस प्रसंग को समाप्त करते हुए कहा—"कुछ हमारा और आपका बाँटा थोड़े ही है। अब आपकी तबीयत कैसी है ?"

उमानाथ ने कहा—"ईश्वर और आप सबकी दया ने चाहा, तो बहुत जल्द ही स्वस्थ हो जाऊँगा। अरुणिमा का तुम्हें कुछ पता है कि वह कहाँ गई?"

बलजोर ने उत्तर देते हुए कहा—"मुझे तो पता नहीं।"

उमानाथ इतने सर्व-प्रिय व्यक्ति हो गये थे कि सुबह से शाम तक देखने वालों का ताँता न टूटता। छोटे-बड़े सभी गाँव घर के आते और बीमारी का हाल-चाल लेकर चले जाते। सब ईश्वर से यही मनाते कि उमानाथ को जल्दी अच्छा करो। वे कहते कि यदि इन्हें कुछ हो गया तो सारे रनपुरा गाँव में अँधेरा हो जावेगा। हम सब तो अपंग हो जावेंगे, दूसरा जिलेदार न मालूम कैसा आवेगा। उसका व्यवहार न जाने कैसा होगा? हमें पता नहीं हमारा भविष्य अंधकारमय दिखाई पड़ रहा है। अरुणिमा किस घाट लगेगी और सुखरानी का क्या होगा और क्या होगा अखिलेश का?

उमानाथ सब को सान्त्वना देते, सुखरानी समझाती-बुझाती और बलजोर सब को तसल्ली देता।

इन दिनों सेठजी का भी हाल कुछ बेढंगा-सा होता जा रहा था। वे जब से चिन्ता विलायत से लौटा है और मजिस्ट्रेटी करने लग गया है अपने को विरक्त-सा बनाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा उपक्रम करते वे लोगों को दिखलाई पड़ते थे। उमानाथ की बीमारी से सारी मालगुजारी वसूल होने से रह गई थी। सब कुछ काम ढीला पड़ गया;

लगान का वसूल-तहसीली भी कुछ नहीं हो रहा है, सरकारी मालगुजारी कैसे अदा हो पावेगी? सख्ती भी काफी हो रही है। अगर उमनाथ को कुछ हो गया, तो गाँव का सारा प्रबन्ध उलट-पुलट जाएगा, अव्यवस्था फैल जाएगी।

उमानाथ की रुग्णावस्था देख कर सेठजी कभी-कभी कहते—"ईश्वर करे, उमानाथ चारपाई से उठ बैठें। मैं तो उन्हीं को अपना सब कुछ कर्ता-धर्ता समझता हूँ, उन्हीं की आँखों देखता हूँ और उन्हीं के दिखाए मार्ग पर चलता हूँ। वे भी मेरे कामों को अपना ही काम समझ कर करते हैं। कोई त्रुटि हो जाती है तो उसे बड़ी मुस्तैदी से सँभालने का प्रयत्न करते हैं। उनकी पत्नी सुखरानी तो साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है। अरुणिमा भी अपने साहस एवं बुद्धि-बल से समाज का बहुत बड़ा उपकार कर रही है। अखिलेश देश-सेवा में ही अपना सर्वस्व होम रहा है। सुखरानी के प्रताप एवं उमानाथ की क्षमाशीलता से दोनों सन्तानें सर्वदा फूले-फलेंगी। मुझे चिन्ता की आरम्भिक गति-विधि से उसका भविष्य ज़रूर बुरा दिखाई पड़ा था। मगर अब उसका जीवन भी किसी तरह सुखमय ही रहेगा। वह राज-शृंखला की एक कड़ी बन कर ईमानदारी के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करे, अपनी मान-मर्यादा बढ़ावे, दिनो-दिन उन्नति करे, देश की नजरों में वह काँटा बन कर न खटके, यही मेरी हार्दिक कामना है।"

———

तेरहवाँ परिच्छेद

अरुणिमा को चिन्ता के बँगले का ठीक पता मालूम नहीं था। १० बज रहे थे। उसे पुराने मजिस्ट्रेटों के कचहरी आने-जाने का पता देहाती मुकदमेबाजी करने वालों से मालूम था; लेकिन फिर भी वह कोर्ट की ओर ही चली। स्टेशन से एक ताँगा कर लिया। रिक्शेवाले ने अधिक हट किया फिर भी वह उस पर बैठना अस्वीकृत करके ताँगे पर ही बैठी। उसकी धानी रंग की साड़ी, खादी का नीला जम्पर और शरीर की ओजमयी आभा मिल कर किसी देखने वाले की आँखों में चकाचौंध पैदा करती थीं। आँखें दौड़ती-सी इधर-उधर देखती जाती थीं। बनारसी एक्केवानों की 'राजा' वाली बोली भी उसे अजीब-सी मालूम होती थी। सड़क की दोनों तरफ फुलवारी वाले बँगले फूलों से सुसज्जित दिखाई पड़ते थे। सड़कों के बीच के पार्क भी लुभाने वाले दृश्यों से युक्त थे। वह कचहरी के फाटक पर पहुँच कर ताँगे वाले को ताँगा रोकते देख कर बोली—"जरा और आगे ले चलो।"

उसने कहा—"सरकार, आगे जाने का हुकुम नहीं है।"

अरुणिमा—"अच्छा, पैसे लो। मैं चली जाऊँगी, मैं किसी को व्यर्थ कष्ट देना नहीं चाहती। अगर तुम्हें समय हो तो रुको। शायद साहब यहाँ आये न हो तो उनके बँगले पर ही चलना पड़ेगा।"

ताँगे वाले ने कहा—"कहाँ की बात हजूर, अभी तो बारह भी नहीं बजे। हाँ, अगर आपको एक नये साहब जो अभी हाल में आये हैं, उनके

यहाँ जाना है तब तो वे आ गये होंगे। वे ठीक १० बजे ही अपने इजलास पर आकर बैठ जाया करते हैं।"

अरुणिमा ने मुसकरा कर कहा—"अच्छा जाओ, हमें उन्हीं के पास जाना है।"

वह आगे बढ़ी जा रही थी कि इतने में हँसते हुये अपनी कुरसी छोड़ कर वे इस ओर आते दिखलाई पड़े।

अरदली ने आगे बढ़कर सलाम किया और पूछा—"आपको कहाँ जाना है?" इतने में चिन्ता स्वयं आगे से ही अगवानी करने के लिये आगे बढ़ता दिखाई पड़ा।

अरुणिमा को उदास एवं अन्यमनस्क देख कर व्यग्रता के साथ उसने पूछा—"सब कुशल तो है?"

अरुणिमा ने कहा—"पिता जी सख्त बीमार है। अखिलेश को देखने की उनकी प्रबल इच्छा है। ऐसी कोई तदबीर है कि अन्तिम घड़ी में अखिलेश से उनका साक्षात्कार हो जाये?"

चिन्ता ने कहा—"कल रविवार को मैंने उनसे जेल में जाकर भेंट की थी। वे प्रसन्न-चित्त मुझसे मिले।"

चिन्ता ने अरुणिमा को ले जाकर विश्राम के कमरे में बैठाया। अरुणिमा ने एक दरख्वास्त लिखी। चिन्ता की सिफारिश के साथ वह ज़िला मजिस्ट्रेट के यहाँ अरदली के हाथ भेजी गई। मजिस्ट्रेट ने उसी

पर जेलर के नाम आर्डर लिख दिया—श्री चिन्तामणि की जिम्मेदारी पर अखिलेश एक सप्ताह के लिये पैरोल पर छोड़ दिया जावे। इसके साथ ही चिन्ता ने अपनी छुट्टी की भी दरख्वास्त भेज दी थी। वह भी स्वीकृत होकर आ गई। दोनों एक ताँगे पर बैठ कर डिस्ट्रिक्ट जेल की तरफ़ रवाना हुए।

जेल के फाटक पर पहुँच कर ज़िला मजिस्ट्रेट का हुक्मनामा जेलर को दिखलाया गया। अखिलेश की जेली पोशाक उतार कर उसके निजी कपड़े दिये गये। अखिलेश ने गांधी टोपी सिर पर रखी, खादी का गुजराती ढंग का सिला कुरता पहिना। पैरों में चप्पल, आँखों पर चश्मा और छड़ी हाथ में ले, दमकता-सा हंसमुख चेहरा लिये वह जेल के फाटक पर आया। अरुणिमा के पैर छूए और चिन्ता को नमस्कार किया और अपने पिता का हाल-चाल पूछने लगा।

अरुणिमा ने कहा—"वे सख्त बीमार है। उनकी इच्छा तुम्हें देखने की है। इसलिये चिन्तामणि की मेहरबानी और प्रयत्न से तुम एक सप्ताह के लिये पैरोल पर छोड़े गये हो।"

अखिलेश ने मन में सोंचा—क्या पिता जी की हालत बहुत खराब हो गई है जो अरुणिमा अपनी रोनी सूरत बनाए हुए है?

तीनों ताँगे पर बैठे और बनारस कैंट स्टेशन की ओर रवाना हुए। रास्ते में चिन्ता का बँगला पड़ता था; लेकिन गाड़ी का समय करीब

था। कहीं वह छूट न जाये इसलिये ताँगे वाले ने घोड़े की बाग कड़ी की। वह हिनहिनाता हुआ तेज़ी के साथ आगे बढ़ा। बँगले पर रुकने से गाड़ी के छूट जाने अंदेशा था। इसलिए सीधे सब स्टेशन पर ही गये। हाँ, बँगले वाला माली जो फूलों को सींच रहा था, चिन्ता ने उसे पुकार कर घर जाने का समाचार बताया। उसने दौड़कर सलाम किया और 'जी सरकार' कह कर वापिस चला गया।

गाड़ी प्लेटफार्म पर मुगलसराय से आकर खड़ी हो चुकी थी। मुसाफिर टिकट ले-ले कर उधर दौड़ते जाते दिखाई पड़ते थे। चिन्ता का अरदली टिकट लेकर आया। तीनों प्लेटफार्म पर पहुँचे और तीसरे दर्जे में सवार हो गये। गाड़ी ने सीटी दी और भकभकाती, धुआँ फेंकती आगे बढ़ी। यहाँ से जो तीसरा स्टेशन पड़ता था वहाँ गाड़ी पहुँची, रुकी। तीनों जने उतरे। कोई सवारी स्टेशन पर न थी। अतएव तीनों पैदल ही घर की ओर आतुरता-पूर्वक चल पड़े।

रनपुरा के नजदीक पहुँचने पर सामने से एक गेरुआ वस्त्र धारण किये एक स्त्री आती दिखाई दी। उसने तीनों को पहिचाना, मगर इन तीनों में से किसी ने उसे पहिचान न पाया। इनकी आँखों ने धोखा खाया। वह रास्ता बदल कर जंगल के बीच जाकर कहीं छिप रही। आज उसने बहुत दिनों पर चिन्ता को देखा था और अखिलेश को भी। उसके दिल में अब चिन्ता के प्रति क्षोभ की जगह सहानुभूति पैदा हो गई थी। किन्तु अभी वह उनकी आँखें बचा कर क्यों निकल गई? वह अपने दिल में सोचती रही कि अभी समय नहीं आया है कि मैं प्रत्यक्ष

रूप से साक्षात्कार कर सकूँ । वह जाना चाहती थी, मजिस्ट्रेट के सामने—एक बन्दिनी के रूप में ।

तीनों गाँव में पहुँच कर सीधे उमानाथ को देखने गये । दरवाज़े पर पहुँचते ही उमानाथ की सँभली तबीयत का समाचार मिला ।

उमानाथ ने तीनों बच्चों को देखा । उनका हृदय वात्सल्य-भाव से उमड़ पड़ा । वे अरुणिमा की बार-बार प्रशंसा करते नहीं अघाते और थकते थे । अखिलेश को सुखरानी ने चूम कर आशीर्वाद दिया । और कहा—"तुम्हारी देश-सेवा की लगन देख कर मेरी कोख सफल हो गई । चिन्ता का वैभव और राज-पाट और दरजा दिल हुलसाने वाला हैं । इसी की कृपा का फल है कि तुम अपने मरते बूढ़े बाप को देख सके हो ।"

चिन्ता ने सिर झुका कर कहा—"यह सब आप लोगों का पुण्य-प्रताप है ।"

सेठ बिहारीमल भी तब तक वहाँ आ गये । अखिलेश ने आगे बढ़ कर उनके पैर छूए, चिन्ता ने भी वही किया । अरुणिमा के गाल में बूढ़े सेठ ने दुलार की एक चपत लगाई । वह मुसकराती पीछे हट गई ।

बलजोर ने अरुणिमा को देख कर कर मन ही मन उसकी सराहना की । सुखरानी ने जल-पान का सब सामान लाकर रखा । सब ने पानी पिया ।

अखिलेश ने कहा—"यहाँ का पानी-दाना सब कुछ जेल से भिन्न है।"

सेठ ने कहा—"बच्चा, वह भले मानुसों के रहने की जगह थोड़े ही है। वह तो नंगे-लुच्चों को सुमार्ग पर लाने का साधन है। मगर देश के दीवानों ने उसे कृष्ण-मन्दिर बनाया, उसके भी भाग्य लौटे। अब वहाँ भी कुछ सुधार होकर ही रहेगा।"

चिन्ता ने कहा—"बहुत कुछ सुधार हो गया है।"

अखिलेश ने हँसते हुए कहा—"सरकार की सफाई का इससे बढ़कर और क्या अच्छा सबूत होगा कि जिसे एक मजिस्ट्रेट स्वयं कह रहा है। उसमें मीन-मेष निकालना हमारे अहिंसात्मक सिद्धान्त के बिलकुल विपरीत है। इनकी बातें यह प्रत्यक्ष कर रही हैं कि जेलों में पहले दोष कुछ अवश्य थे।

चिन्ता ने हँस कर मुँह दूसरी ओर फेर लिया। इसे कल ही चला जाना चाहिए था। मगर आज की भी छुट्टी लेकर वह यहाँ ही रह गया। उमानाथ की तबीअत अब काफी सँभल चुकी थी। वह चलने फिरने जैसे हो गये थे। छावनी तक भी आने जाने लगे।

चिन्ता सवेरे की गाड़ी से बनारस चला गया। इस बार अरुणिमा की चित्त-वृत्ति उसकी ओर विशेषकर झुकी दिखाई पड़ी। अखिलेश ने इनकी बातों और व्यवहारों में विशुद्ध प्रेम का पुट पाया। वह चिन्ता के आरम्भिक जीवन से खिन्न हो गया था, इस समय के रंग-ढंग एवं उसके व्यवहार से

से वह गद्‌गद् हो गया। वह सोचता—विलायत का स्वतंत्र वायुमंडल पाकर चिन्ता एक आदर्श स्थापित करने वाला व्यक्ति बन गया है। जहाँ जाकर लोग अक्सर बिगड़ते देखे जाते हैं, वहीं से यह बन कर आया है। वह अब पछताता और कहता कि चिन्ता को क्या मेरी पिछली डाट-फटकार की बातें अब तक याद होंगी? कामिनी का कहीं पता नहीं। यह सब खयाल करके अखिलेश विचलित हो जाता। दिल धड़कने लगता। चिन्ता के विश्वासघात को कामिनी क्या समझती होगी? वह क्या अब भी आई० सी० एस० की प्रतीक्षा में अपनी समाधि लगाए बैठी होगी? यदि मैंने सच्चे हृदय से इन दोनों को सुमार्ग पर लाने के लिए कुछ अनुचित बात भी कही होगी, यदि वे ठीक रास्ते पर आए होंगे तो वे मुझे बुरा न कहेंगे। चिन्ता को तो देख कर जी यही चाहता है कि इसके सम्पर्क में सदैव रहा जाय। ईश्वर कामिनी को भी इन्हीं की तरह सुमार्ग पर लगी हमें दिखावे। तब मेरी सारी कामनाएँ पूर्ण हों। जिस कामिनी को मैंने चिन्ता के समीप रहते नहीं पहिचान पाया और चिन्ता को भी समझने में भूल की। चिन्ता शायद उन बातों को भूल-सा गया है। और कामिनी? कामिनी का परमात्मा जानें। उसने प्रेम किया—सरस्वती मन्दिर में—वह प्रेम करने के उपयुक्त स्थान नहीं था। वह तो था भूमिका-स्थल। दुनिया प्रेम करने की जगह है। सारा संसार ही प्रेम करता है। यह सारा जगत प्रेममय है। जल-स्थल, प्रकृति, पवन सब प्रेम में आबद्ध हमें सुमार्ग दिखा रहे, है। पक्षि-जगत अपने स्वाभाविक स्नेह और प्रेम का परिचय देता है। पशु-समाज भी इससे अलग नहीं है। वह स्थानान्तरित होते समय प्रेम में पागल हो-होकर पुकारता है, अपनी-याद दिलाता है। किन्तु पुरुष का प्रेम, और स्त्री का

नेह सर्वोपरि है। यही जगत की ऊँची सीढ़ी है; यही वह सोपान है जो हम जैसे निराधारों को ईश्वर के समीप पहुँचा देता है। प्रेमदेवता न जाने कितनी ठोकरें खिलाता, दिलों को तोड़ता, अपनी अडिग समाधि लगाये प्रेमियों की पूजा लेने के लिए उत्सुक रहा करता है। मगर क्लेश और दुखयोगी प्रेमीजन अपना प्रेम-पुष्प लेकर वहाँ पहुँचता अवश्य है। कामिनी भी इसी का शिकार बन रही है क्या?

अरुणिमा ने अपनी कन्या-पाठशाला एवं देश-सेविकाओं का संगठन, जो संन्यासिनी द्वारा परिचालित था, अखिलेश को सब दिखाया और समझाया। अखिलेश भी अरुणिमा के सारे कार्यों और देश की सच्ची और वास्तविक सेवा देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—

"यह वास्तविक संगठन किसी दिन देश के काम अवश्य आएगा और वक्त आने पर देश का उद्धार इन्हीं कामों से होगा ऐसा उज्ज्वल भविष्य दिखाई पड़ता है। मालूम होता है जैसे संन्यासिनी ने लोगों में रूह फूँक दी है।

अखिलेश को पेरोल पर छूटे पूरे छः दिन हो गये। तब तक उसके पिता उमानाथ अपना सारा काम-काज पूर्ववत सँभालने योग्य हो गये थे।

अखिलेश ने एक दिन उनसे कहा—"पिताजी आपकी उम्र अब अधिक हो चुकी है इसलिए परिश्रम अधिक न किया करें। जब तक आप इस संसार में हैं, हम लोगों के लिए ढाल का काम दे रहे हैं। कल ही मुझे

जेल में हाजिर हो जाना चाहिए। यदि आपकी आज्ञा हो तो आज ही शाम पेसेंजर गाड़ी से बनारस चला आऊँ।"

सुखरानी और उमानाथ दोनों ने प्रसन्नता-पूर्वक पुत्र को विदाई दी। अरुणिमा उसे स्टेशन तक पहुँचा आई।

गाँव वाले सब दंग रह गये। अखिलेश की निर्भीकता एवं साहस पर उन्हें आश्चर्य होने लगा। देश की बलि-वेदी पर चढ़ने वाले इसी तरह के होंगे; तभी तो निकट भविष्य में देश स्वतंत्र होगा, नहीं तो गुलामी का तौक तो गले में पड़ा ही है। जेल जाना अब खेलवाड़ हो गया है। जेल का नाम सुन कर पहले लोग थर्रा जाते थे; मगर अब तो वह एक तीर्थ-स्थान सा बन गया है। इसका परिणाम क्या होगा, ईश्वर जानें। देश के भीतर जाग्रति अवश्य हो गई है। देखें हमारे रहते कुछ हो जाता है कि नहीं।

पुरोहित ने कहा—"सब इसी तरह रहेगा।"

बलजोर ने कहा—"नहीं, थोड़े ही दिनों के भीतर कायापलट हो जायगी। जनता का शासन देश में होगा और होगी ऐसी सुव्यस्था कि भारतवर्ष फिर अपने प्राचीन आदर्श पर पहुँच जायेगा। देश में सुख-शांति विराजेगी और गरीबों का भला होगा।"

———————

चौदहवाँ परिच्छेद

संन्यासिनी रनपुरा गाँव में कभी न कभी अवश्य आ जातीं। वह वहीं पास ही एक घने जंगल में रहने लग गई थीं। वह दिन-भर गाँवों की स्त्रियों में प्रचार-कार्य करतीं, चरखा कातना बताती और खादी-भंडारों की व्यवस्था करती थीं। स्थानीय पुलिस इनके ठोस कामों को देख कर इनके ऊपर कड़ी निगाह रखने लगी। हकीम के रूप में यह सब जगह पहुँच जातीं और उसके साथ ही साथ अपना उद्देश्य पूरा करती थीं। उमानाथ की बीमारी का पता पाते ही वह वहाँ गईं और दवा आदि देकर उनको अच्छा कर आईं। एक दिन एक सार्वजनिक सभा में लेक्चर देते वक्त उनके मुँह से निकल पड़ा--गुलामों का जीवन कोई जीवन नहीं है। उन्हें संसार में रहने और जीने का कोई अधिकार नहीं है। जो शक्ति इसकी उत्तरदायी है उसे क्या करना चाहिये और उसके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है, यह एक खुली-सी बात है। हर हिन्दुस्तानी बच्चा-बच्चा इसे जानता है। हमें भी सुखकर जीवन भाता है; हम भी ईश्वर की सन्तान हैं। हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार ही छीन लिया गया है। मूल में ही घुन लग गया है तो फिर आगे हरियाली कहाँ से आ सकती है? बस फिर क्या था, उसके दूसरे ही दिन संन्यासिनी के नाम वारंट निकला और वह प्रजा को उभाड़ने के अभियोग में पकड़ कर जेल के अन्दर कर दी गईं।

अब तक हो साधारण सत्याग्रहियों के अपराधों का ही निर्णय

चिन्तामणि को करना पड़ता था। वह अपनी कुछ भी पैरवी न करते थे। पुलिस की रिपोर्ट पर दफा लगा कर सज़ा सुना देनी पड़ती थी। जेल की कैद की सजा के साथ-साथ जुर्माना अवश्य करना पड़ता था, लेकिन कल एक मुकदमे के फैसले में वह अधिक परेशान हुआ। जिसे सारा रनपुरा गाँव संन्यासिनी कहा करता था, अरुणिमा से जिसकी काफी घनिष्टता थी; वह उसकी पूर्व परिचित कामिनी ही थी, कोई दूसरी न थी। उसे एक सभा में राज-द्रोहात्मक भाषण करने के सिल-सिले में इसे कारावास का दंड देना पड़ा था। इच्छा न रहते हुये भी इसे ऐसा करना पड़ा। आज भी प्रातः से ही उसका दिल धड़कता जाता था और किसी अमंगल की सूचना देता मालूम होता था। जिस संन्या-सिनी का नाम इसने अरुणिमा के मुँह से सुना था, और जिसका सुराग लगाने में कुछ उठा नहीं रखा था, लाख कोशिश करने पर भी जिसका पता नहीं मिल सका था। वही पूर्व परिचित आज अपराधिनी बनी उसके सामने खड़ी थी। सचमुच इसके सामने मुझे अपराधी बन कर क्षमा-याचना के लिये जाना चाहिये था, यही उलटी बात चिन्ता की चिन्ता बराबर बढ़ाती जा रही था। कभी सोचता—मैं स्वयं अपराधी हूँ। जो निरपराध है, उसे कैसे मुजरिम बनाऊँ? प्रेम कहता था—जाने दो। इस त्याग-मूर्ति तपस्विनी की पूजा कर लो, इसको इस रूप में पहुँचाने के मुख्य कारण तुम्हीं हो। इधर कर्त्तव्यपालन इन तमाम बातों पर पानी फेर देता। फिर दिल कह उठता—नहीं, तुम दिल खोल कर अपने किये गये कार्यों का प्रायश्चित कर लो, लेकिन वह फिर बरबस हाथ मल कर कहता—नौकरी का ऋण चुकाने और भूतकालीन

कामों को प्रज्वलित करने के लिए जलती आग में आहुति बनने का उपकरण यह कर्त्तव्य बन रहा है।

चिन्ता ने निश्चय किया, अभी कर्त्तव्य पालन का ही ठीक रास्ता है। प्रेम की हार होते-होते भी जीत हुई। इस बार की कामिनी उर्फ संन्यासिनी का पलड़ा भारी रहा। उस बार उसकी अवहेलना ने चिन्ता को विलायत भेजकर मजिस्ट्रेट बनाया और स्वयं उसने देश-सेविका बनकर और जेल जाकर इसे कर्त्तव्यच्युत होने से बचाया, लेकिन आगे क्या गुल खिलावेगा, यह तो भविष्य के गर्भ में है। दुनिया का बेमेल काम किसे नहीं खलता! अब से चिन्ता अधिक उद्विग्न रहने लगा। वह इतने बड़े पद पर रह कर भी अपनी आत्मा को सन्तुष्ट न कर पाता था। उसका मन भी इतने दिनों से शासन चक्र चलाते-चलाते बिलकुल ऊब-सा गया था, और वह भी किसी दूसरी ओर खिंचता जाता था।

अब तक तो साधारण सत्याग्रहियों का मुकदमा इजलास पर ही पेश हुआ करता था। मगर ज्यों-ज्यों आन्दोलन तीव्रतर होने लगा; इधर दूसरा प्रबन्ध करना अनिवार्य जान पड़ा। आज चिन्ता के इजलास पर पहुँचते ही यह आदेश मिला—जेल में सत्याग्रहियों का मुकदमा देखने के लिए अब आपका इजलास वहीं जेल में हुआ करेगा।

संन्यासिनी का वक्तव्य वह बार-बार पढ़ता और उसके जीवन के व्यतिक्रम पर आश्चर्य करता। घंटों सोचता और कभी-कभी खिलाकर हँस

पड़ता। वह फिर उसे पढ़ने लगता और कहता—उसने अपने बयान में लिखा है—"वर्तमान राजकीय रूढ़ियों से मैं इतनी घबरा गई हूँ कि मुझे अब बाहर रहना शोभा नहीं देता। जहाँ अखिलेश विराजमान है; उसकी सेवा में चलकर ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति हो सकेगी। स्त्रियों को भी इस काम में काफी हिस्सा लेना चाहिए, जिससे पुरुष समाज स्वतंत्र होने पर हमारे ऊपर फब्तियाँ न उड़ावे। मुझे अपराध स्वीकार है। हाँ इतना कह कर मैं स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि मेरे भाषण के शब्दों को पुलिस ने काफी तोड़-मरोड़ कर उसे अपराध के योग्य बनाने में कोई कसर नहीं रखी है।" क्या ही ग़जब का वक्तव्य है। कामिनी! तू सचमुच पूजा करने योग्य है!

चिन्ता ने जेल की पहली इजलास करने के लिए उसके अन्दर कदम रखा। कुरसी पर बैठते ही वह अरुणिमा को मुजरिम के वेश में खड़ी पाता है। यदि वहाँ दूसरे लोग न होते तो वह कर्त्तव्य-च्युत अवश्य हो जाता। मगर कर्त्तव्य की अवहेलना करना कितनी भयंकर बात है इसे वह अच्छी तरह से जानता था। इसी लिए अरुणिमा को भी जेल भेजने में वह संकोच करता न दिखाई पड़ा।

अरुणिमा ने कोई बयान देने से इनकार कर दिया था। देश-सेविका-संगठन गैरकानूनी करार दिया गया था। उसकी संचालिका होने के नाते यह जुर्म इसके ऊपर लगाया था। उसे इससे इनकार तो था नहीं, वह झटपट अपना अपराध स्वीकार करके जेल की मेहमान बन गई।

अरुणिमा को आज इतने दिनों के बाद अधिकार, कर्त्तव्य एवं प्रेम का भेद समझने का अवसर मिला। वह बार-बार चिन्ता की मुखाकृति देखती, किन्तु वह सिर नीचा किये ही सारी कार्रवाई समाप्त करने में व्यस्त रहा। अरुणिमा और संन्यासिनी दोनों को 'ए' क्लास में रखने की सिफारिश भी चिन्ता ने कर दी।

एक दिन बाद अरुणिमा जेल पहुँची। संन्यासिनी पहले ही वहाँ पहुँच चुकी थी। उसी के वार्ड में अरुणिमा भी रखी गई। दोनों के सामने जेल की श्रेणी विभाजन के सम्बन्ध में अखिलेश का उच्च आदर्श सामने था। इन दोनों ने भी इस सुविधा को त्याग कर तीसरी ही श्रेणी में रहने की घोषणा कर दी।

अखिलेश से रोज इन दोनों की भेंट होती है। सब प्रसन्न-चित्त रहते। सत्याग्रहियों की अधिकता से जेल के साधारण कैदी बराबर रोज छुटते ही रहते थे। सारा देश बस काम में तल्लीन हो गया। और होता दिखाई पड़ने लगा। उधर से जितनी ही सख्तियाँ होतीं, उतना ही इधर जोश अहिंसात्मक भाव लिये तीव्रतर बढ़ता ही जाता था।

देश के सामने एक विकट समस्या आ गई थी। वह विश्व-व्यापी युद्ध जो कि यूरोप में पैदा हुआ, अपना पाँव पसारते हुए सारे भू-मंडल में दिखाई पड़ने लगा। पहले तो देश को पश्चिम से ही खतरा था; लेकिन अब तो अपने पड़ोसी और कल के अपने ब्रह्मा पर होने वाला आघात

सब को चिन्तित और चकित करने लगा। कुछ इधर से, कुछ उधर से दबाव भी पड़ने आरम्भ हुये। जेल में राजनैतिक बन्दियों को रख कर हृदय-परिवर्त्तन का अभिनय कैसे हो सकता था ? सत्याग्रही बन्दी रिहा होने लगे। संन्यासिनी एवं अरुणिमा जेल से छूट आईं। मगर नज़रबन्द अखिलेश का मामला विचाराधीन ही रह गया। क्योंकि सरकार की दृष्टि में इनसे बढ़कर साम्राज्य का अहित कोई कर ही नहीं सकता।

यह गुरुतर भार भी चिन्ता के ऊपर पड़ा। वह सोचने लगा—मेरी परीक्षा क्या अभी भी खतम नहीं हुई ? कभी सोचता—अखिलेश निरपराध है। उसको तो मैं जरूर ही छोड़ दूँगा। पीछे देखा जावेगा।

इसके और अखिलेश के सम्बन्ध का भी पता आफीशियल सर्किल को लग गया था। लोगों की कड़ी निगाह चिन्ता पर भी रहने लगी थी। सी० आई० डी० की नजरों से वह कब तक बच सकेगा इसका उसे पूर्ण परिज्ञान था। पेट के अन्दर घुस कर पता लगाने वाले सी० आई० डी० मेरा भी एक दिन भंडाफोड़ कर ही दें, इसीलिये उसकी इच्छा हुई कि मैं भी त्यागपत्र दे दूँ। परमात्मा ने सब कुछ दिया है। नौकरी के जंजाल में फँस कर मैंने अपनी आत्मा को संकुचित करा लिया, उसे बेंच डाला। अपने प्रिय-जनों को जेल भेजा। क्या यह सब कर्त्तव्य-पालन के नाते किया ? नहीं, उसकी आत्मा कह उठती—

नौकरी और गुलामी के नाते तथा साम्राज्य की रक्षा के लिये। बात भी वास्तव में यही थी। उसने निश्चय कर लिया, ऐसी नौकरी से अलग रहना ही श्रेयस्कर है। लेकिन अभी नहीं, अखिलेश का मामला देख कर। उसका मन अब नौकरी की तरफ से खिन्न रहने लगा। हालाँकि उसकी नौकरी कुछ मामूली नौकरी नहीं थी, लेकिन वह समझता था नौकरी तो आखिर नौकरी ही है। डिप्टी कलेक्टरी एक क्लर्की से आगे और कुछ नहीं। दिन भर गवाही-शहादत लेते जान जाती है और रात भर फैसला लिखने तजवीज देने के लिए मिसिलों में आँख गड़ाए जीवन भार बन जाता है। मुकद्दमों का फैसला करते समय सब कुछ करना पड़ता है। इस प्रकार बाहरी दुनिया से कोई सम्पर्क ही नहीं रह जाता।

रात-भर अखिलेश के मामले के सम्बन्ध की सारी फाइलें उसने उलट-पुलट कर देखीं और देख चुकने के बाद जब सारा संसार निद्रा देवी की गोद में सोया खर्राटे की नींद ले रहा था, कोई नहीं जानता—ईश्वर के अतिरिक्त--ऐसी निस्तब्धता में उसने अखिलेश के छोड़ने का निर्णय किया और साथ ही इतने दिनों की कमाई छोड़ने के लिए अपना त्याग-पत्र भी लिख डाला।

दूसरे दिन इजलास पर गया। अखिलेश बंदी की हालत में उसके सामने लाया गया। मुकदमा शुरू हुआ। मजिस्ट्रेट चिन्तामणि ने अपना फैसला सुनाते हुए कहा--"चूँकि, अखिलेश का अपराध संगीन नहीं है इसलिए उसे छोड़ देने का हुक्म देता हूँ।" इसे सुन कर सब तब्ध रह

गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। इजलास खत्म करके तुरन्त ही वह कचहरी में आया और अपना त्याग-पत्र जिला मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया और अपनी ही कार में अखिलेश को बैठा कर अपने बँगले पर पहुँचा।

उसने अखिलेश से कहा—"जहाँ संन्यासिनी, अरुणिमा और अखिलेश हैं; उसके सिवाय दुनिया में मेरे लिए कोई दूसरी जगह हो ही नहीं सकती। इसके विपरीत कुछ दूसरा सोचना अपनी आत्मा को धोखा देना है। मैंने तुम लोगों के बीच आकर काम करना मजिस्ट्रेटी से कहीं अच्छा समझा।"

———

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

जिस चिन्ता को देख कर पुलिस के सिपाही पैर मिला कर बाक़ायदे खड़े होते और सलाम करते थे, उसी चिन्ता पर अब सन्देह की कड़ी निगाह रखने लगे। एक ऐसे समय में जब कि सरकार को चिन्ता जैसे मनीषी एवं कर्मनिष्ठ की जरूरत थी। इसकी जगह की पूर्ति करना बिलकुल असम्भव-सा था। सरकारी पद को ठुकरा कर जन-सेवा को अपना ध्येय बनाना कितना सुखकर और सुन्दर विचार था। जो लोग आये दिन इन पदों से चिपक कर देश और जाति को धोखा देकर अपना पेट पाल रहे हैं, उनसे देश किसी समय प्रश्न कर सकता है और इन्हें उस समय जवाब देते न बन पड़ेगा। भारतीय प्रकृति में ही घुन लग गया है; बहुतों को तो कुछ मजबूरियाँ सताती हैं, कुछेक पेट के लिये ही गुलामी कर रहे हैं, कुछ मान और शान के लिये ही सरकारी मशीन के पुरजे बने हुये हैं। जिस मशीन के पुरज़े वे हैं उसी में मोर्चा लग गया है। समाज का संगठन, उसका निरूपण यदि इसी ढाँचे में ढलता रहा, तो समझ लीजिये क्या होगा। बदल जाने पर भी क्या यही व्यतिक्रम जारी रहेगा। चिन्ता यही सब सोचात रहता। "यदि हृदय-परिवर्तन न हुआ, तो क्या एक मजिस्ट्रेटी की जगह छोड़ कर आज-कल पक्का जमींदार बनना श्रेयस्कर न होगा ?'

"आज-कल के जमींदारों का जीवन तो और भी नरकमय हो गया है। प्रजा का खून चूसना, सख्ती से बेगार लेना यही उनकी दिनचर्या

है। यह प्रथा किसी कानून के बन जाने से समाप्त नहीं हो सकती ? जब तक दोनों का हृदय परिवर्त्तन न होगा तब तक वायुमण्डल विशुद्ध प्रेम का बन ही नहीं सकता। एक नरक से अब दूसरे नरक की ओर प्रयाण करना होगा।"

ऐसे दृष्टिकोण वाला व्यक्ति सरकारी काम का कब हो सकता था ! संकट के समय घर के आदमियों को छोड़ कर बाहरी विश्वासी व्यक्तियों की भी ज़रूरत पड़ा करती है। तब ऐसे कुसमय में इसका त्याग-पत्र देना सर्व-साधारण को भी खटक सकता था, वहाँ के राज-काल की बात तो निराली ठहरी ? लेकिन एक बात सोच कर कि देश की अवस्था अब कुछ दूसरी ही हो चली है, नहीं तो अखिलेश को कारावास से मुक्त करने वाला चिन्ता नजरबन्द हो कर जेल के सीखचों के अन्दर बन्द दिखाई पड़ता।

चिन्ता ने घर आते ही अपनी जमींदारी का नये सिरे से प्रबन्ध करना शुरू कर दिया। पहला काम जो उसने किया, वह खेतों की चकबन्दी का था। इसके इस नये काम से पहले तो रिआया में बड़ी चीं-चपड़ मची, मगर बाद को जब धीरे-धीरे लोगों ने इसका मूल्य समझा, सर्वत्र शान्ति विराजने लगी। अखिलेश को भी उसने अब उसके बूढ़े पिता उमानाथ की जगह देख-रेख करने वाला अपना साझी-दार बनाया। अरुणिमा को गाँव की स्त्री-शिक्षा का प्रबन्ध और बन्दो-बस्त पहले जैसा ही करते रहने का आदेश हुआ। अब उसकी आर्थिक दशा भी ठीक हो चली थी। जमींदारी की ओर से उसे यथेष्ट सहायता

मिलने लग गई। संन्यासिनी समाज-सुधार तथा धर्मोपदेश का कार्य करने लगीं।

हरएक किसान ने सुविधा के अनुसार अपनी-अपनी चक में एक-एक कुआँ बनाने की स्कीम बनाई। चिन्ता की तरफ से अखिलेश ने इस काम में काफी आर्थिक सहायता और परामर्श दिया। सरकारी इंजीनियरों से भी इसमें मदद ली गई। उनके सहयोग से सिंचाई के लिए जो पानी का अभाव था उनका रोना सदैव के लिये जाता रहा। कहीं-कहीं चिन्ता ने स्वयं ताल और बाँध तथा कुएँ बनवाए। गर्मियों में सूख जाने वाली रेवती नदी अब जल-राशि का काम देने लगी। बात यह हुई कि इसमें मजबूत बाँध डाल दिया गया जिससे बरसाती पानी जाड़े और गर्मी में काम आने लगा। इस प्रकार खेती के एक आवश्यक अंग की पूर्ति हुई।

गाँव में कई प्रकार की सहयोगी समितियाँ खुल गईं। महाजनों ने पहले तो बिगड़े साँड़ों की तरह बड़ा ऊधम मचाया मगर उसका परिणाम समझ कर अपनी अपनी जगह खामोश हो गये। गरीब और असहाय किसानों को अब कम सूद पर रुपया उधार मिलने लगा। फजूलखर्ची बन्द हो चली। विवाह-शादी और उत्सवों में सादगी दिखलाई देने लगी। आतिशबाजी और फुलवारी आदि रूढ़ियाँ प्रायः समाप्त हो चली थीं। कोआपरेटिव स्टोर के द्वारा गाँव के उद्योग-धन्धों की बनी और तैयार की हुई चीजें सामूहिक रूप से बिक कर हरएक किसान को पहले से अधिक मुनाफा देने लगीं। आवश्यक वस्तुएँ आसानी से कम कीमत पर इन्हें मिलने लगीं।

इस प्रकार रनपुरा गाँव एक आदर्श ग्राम बनने लगा। खेती की भी उन्नति हो चली। अच्छे और अधिक उपज देने वाले बीज बोए जाने लगे। साग और तरकारियाँ भी इफरात से होने लग गईं। फलदार पेड़ों की बाढ़-सी आ गई। हरएक घर एक 'चमन' बनने लगा। अच्छी नस्ल के साँड़ और भैंसों से जानवरों की जातियाँ सुधरने लगीं। शिक्षा के काफी प्रसार से संतानें सुशिक्षित एवं सुशील होने लगीं। गाँव का कोई मुद्दमा अदालत में न जाकर आपस की पंचायतों में ही तै होने लगा। मार-पीट और झगड़ा करता तो कोई दिखाई हीं नहीं पड़ता था। इतनी उच्च शिक्षा पाये हुए चिन्ता और अखिलेश किसानों में इस प्रकार हिल-मिल गये कि चिन्ता आई० सी० एस० है और अखिलेश विश्वविद्यालय का एम० ए० उत्तीर्ण स्नातक, इसे कोई समझ ही नहीं पाता था।

"आज हमारे गाँवों की जो दुर्दशा हो रही है उसका एकमात्र कारण शिक्षितों का गाँवों को छोड़ कर नगरों में चला जाना है।" चिन्ता बराबर कहा करता।

अखिलेश कहता—"सब से बड़ी बात यह है कि हमारा भारतवर्ष वास्तव में नगरों में नहीं बसा है, प्रत्युत इन ऊजड़ गाँवों में है। यहाँ शिक्षा-सूर्य का प्रकाश घनीभूत तम के रूप में बदल गया है। अविद्या की मायाविनी राक्षसी हमारा खून चूसती चली जा रही है। फूट और कलह हमारा सर्वस्व स्वाहा करते चले जा रहे हैं। देहातियों के खून की कमाई और गाढ़े पसीने के धन से पले-पोसे और शिक्षित बने वकील इस

फूट और कलह के बढ़ाने में और सहायक हो रहे हैं। इन्हीं बातों से हमारा समाज दिनों-दिन जर्जर और क्षीणकाय होता चला जा रहा है।"

अरुणिमा ने कहा—"ठीक है। भारत की गरीबी जब तक अशिक्षा, फूट एवं कलह का निराकरण नहीं होता, तब तक नहीं जा सकती। हमारा हृदय सहसा कह उठता है—शिक्षितों एवं धनी-मानी सज्जनों को शीघ्र ही इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा। गरीबों की आहों की ज्वाला में से जब कराल लपटें निकलने लगेंगी, उनसे जिनका सम्पर्क होगा उनका सर्वनाश निश्चित है। समय रहते यदि यह उपर्युक्त वर्ग नहीं चेत जाता और नींद से आँखें नहीं खोलता तो वह दिन दूर नहीं जब महा भयानक ज्वालामुखी के विस्फोट से ऐसा भूकम्प होगा कि ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ धराशायी हो जावेंगी और उनका सारा धन-द्रव्य मलवों के नीचे दब जावेगा। वे कलपेंगे और हाथ मलने के अतिरिक्त और कुछ न कर सकेंगे। उनका अस्तित्व सर्वदा के लिए मिट जावेगा।"

चिन्ता ने स्पष्ट करते हुए कहा—"भविष्य का लक्षण यही दिखाई पड़ रहा है। दुनिया भर की सारी शक्तियाँ इसी वर्त्तमान लड़ाई में टकरा कर चकनाचूर हुई जा रही हैं। कोई टिकता नहीं दिखाई पड़ रहा है। महाभारत के घोर युद्ध के बाद जिस प्रकार ज्ञान और विज्ञान का लोप हो गया वैसे ही जान पड़ता है कि बिनाशकारी युद्ध के पश्चात् भी होगा। संसार में महँगाई मुँह बाए दौड़ती और फैलती चली जा रही है। सारी दुनिया त्राहि-त्राहि कर रही है। गरीब और अमीर सब को दाना और कपड़ा मोहाल हो रहा है। ऐसे ही समय में प्रकृति-देवी भी कूपित हुई जान पड़ती हैं। नाना प्रकार की व्याधियाँ फैल रही हैं, बादल पानी दे रहे हैं, कुसमय की मृत्यु

कुटुम्ब के कुटुम्ब को बरबाद किये जा रही है; यही नहीं बल्कि संसार में एक भयानक तांडव नृत्य होने जा रहा है। इस विभीषिका का अभिनय न जाने कब यवनिक पतन के साथ समाप्त होगा कुछ पता नहीं चलता समझ में नहीं आता। दयामय ईश्वर क्षीरसागर में सोये भक्तजनों की परेशानी कुतूहल के साथ देख रहे हैं, मगर न जाने क्या सोच-समझ कर शान्त और चुप हैं। हमारी बुद्धि काम नहीं करती, दिमाग का दिवाला निकला जा रहा है। भगवान कुशल करें। हमें तो एक महा भयानक संहार दृष्टि-गोचर हो रहा है। क्या वास्तव में इस विकराल विभीषिका की समाप्ति किसी सत-युग के आरम्भ की भूमिका तो नहीं है? जब मनुष्य की बुद्धि हताश होगी, ज्ञान-विज्ञान को विराग होगा, वर्तमान चलने वाले दांव-पेंच खतम और नष्ट होंगे तब सचमुच नये ज्ञान के आविर्भाव के साथ दुनिया का काया-पलट होगा और होगा सुखमय निर्धनों का संसार। उसमें साम्राज्य का नामोनिशान मिटा दिखाई पड़ेगा। प्रजा-तंत्र की उषा अपना पूजा का थाल सँवारे प्रकृति देवी के आँगन में ईश्वर की भक्ति-पूर्वक वन्दना करेगी, और उसी शुभ अनुष्ठान के साथ-साथ नव-जीवन का आरम्भ होगा। ऐसा ही शुभ लक्षण हमें दिखाई पड़ने लगा है। वर्त्तमान दुःखमय संसार इससे शीघ्र मुक्ति चाहता है।"

अब संन्यासिनी की कुटी वाली सार्वजनिक प्रार्थना ग्रामीणों का एक प्रधान कार्य-क्रम हो गई। इसकी आभा रनपुरा से निकलकर समीप के झोंपड़ी वाले गाँवों में भी प्रकाश फैलाने लगी। इतना ही नहीं चिन्ता के बीच में रहते हुए भी इस क्षेत्र की चिन्ता काफूर हो गई। हरएक घर सुखी था, परस्पर प्रेम और सहानुभूति थी, सब में आपसी व्यवहार सम्बन्धियों की

तरह होता था। स्त्रियाँ वास्तविक गृहदेवी का स्थान ग्रहण कर रही थीं। त्योहारों और पर्वों में एकता और राष्ट्रीयता का पुट पाया जाने लगा। आडम्बर दूर भाग गया। व्यापार की उन्नति हुई। जमींदार और प्रजा में चोली-दामन का-सा सम्बन्ध हो गया। सेट बिहारीमल रात-दिन भगवान के भजन में लीन रहते। गाँव वाले उनकी सज्जनता पर मुग्ध होकर सराहना करते नहीं अघाते थे। इस प्रकार रनपुरा गाँव भारत के और गाँवों के लिए आदर्श बन गया।

उमानाथ अब सुखरानी से कहते—"मेरी आरम्भ की कही बातें अब तुम्हें अक्षरशः सत्य और प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई पड़ती होंगी। अब तुम्हें समझ में आया होगा सन्तानों का महत्व। यदि मैंने तुम्हारी बात मानकर बाल्यावस्था में ही गुड़ियों की तरह शादी की चक्की इनके पैरों में बाँध दी होती तो आज जो इनसे देश की इतनी बड़ी सेवा होने जा रही है कहाँ से हो पाती? पुरोहित को अगर हमने ईर्ष्या से पुरोहिती काम न देकर उनकी अधोगति की होती तो उनकी कलुषित आत्मा से इन सन्तानों के सुकर्मों में रोड़ा अटकाने वाले न जाने कितने पुरोहित तैयार हो जाते।"

बलजोर ने उमनाथ की बात का समर्थन करते हुए कहा—"ठीक कह रहे हो भैया उमानाथ! तुम्हारा सत्-सुकृत इनको इस पद पर पहुँचाने वाला बना है। ठीक है, दरिद्रता ही उद्यम की प्रधान उत्तेजक है। चिन्ता भी अखिलेश के सम्पर्क में रह कर एक गरीब का लड़का ही प्रतीत होता है। दोनों का साधु-स्वभाव, गाम्भीर्य एवं शालीनता देखते ही बनती है। इतना प्रगाढ़ पांडित्य होते हुए यदि ये चाहते तो सरकारी बड़े से बड़ा दर्जा और मान-सम्मान प्राप्त करते; मगर नहीं, देश की गुलामी को समूल नष्ट करने के

लिए आज दोनों फकीर बने दर-बदर की खाक फाँकते फिर रहे हैं। वास्तव में ऐसे ही कर्त्तव्य-निष्ठों से दुनिया अड़ी और टिकी है। हमारा देश जो संसार का शिरोमणि था आज गुलामों की श्रेणी में खड़ा कलप रहा है। इसकी यह दुःखी अवस्था चिन्ता और अखिलेश को चैन से सुख की रोटी नहीं खाने दे रही है। बेचारे गरीबों के झोंपड़ों में जाते, लोगों के दुःख सुख में शरीक होते और उनका दुःख-दर्द दूर करते हैं। ईश्वर इन्हें चिरायु करे जिससे देश का कोढ़ दूर हो।"

एक दिन पुरोहित ने बहुत सोच-समझ कर अपने विचार प्रकट किये। सेठ बिहारीमल, उमानाथ और सब लोग बाल-गोपाल सहित बैठे थे तभी पुरोहितजी ने खड़े होकर कहना आरम्भ किया—

"अगर मुझे क्षमा किया जाय तो मैं अपनी कुछ बात आप लोगों के समक्ष रक्खूँ, जिससे एक प्रेम की दुनिया भी बसेगी और मेरा अपना प्रायश्चित भी हो जावेगा। मैंने बहुत कुछ सोच कर यह निर्णय किया है कि यदि आप महान् पुरुषों की दया ने साथ दिया तो हमारा भविष्य, गाँव का ही नहीं, वरन् सारे देश का गौरव और महत्व संसार की दृष्टि में बहुत उच्च हो कर रहेगा।'

सब लोग पुरोहित की बातें सुन कर चकित हो गये। कोई कुछ सोचता और कोई कुछ कहता। अन्त में सब लोगों के हाँ करने पर पुरोहित ने कहना आरम्भ किया।

"इसके पहले कि मैं आप लोगों से कुछ कहूँ, अपनी पिछली भूलों के लिए आपसे क्षमा-याचना करता हूँ। मैं उस वक्त भूला था। मेरे ऊपर मायाविनी ईर्ष्या की छाया पड़ गई थी। उसे उमानाथ की सहृदयता एवं

सेठजी की उदारता ने हटाया। अरुणिमा और चिन्ता के प्रति मेरे कुविचारों से उत्पन्न कुकृत्यों से जो छींटे पड़े थे, उसे अरुणिमा और चिन्ता के विशुद्ध प्रेम और स्नेह ने धो डाला। आज वही मुझे इनके सम्मुख निगाह करने के लिये विवश कर रहा है और कह रहा है कि इन देव-मूर्त्तियों से तुम कभी भी उऋण न हो सकोगे। आप अपनी अभिलाषा अब प्रगट करें। क्या आप इनको एक नव आदर्श दम्पति के रूप में देखना चाहते हैं? हाँ, एक बात और जो संन्यासिनी हम सब लोगों के लिये एक पहेली बनी थीं उनका चरित्र जान कर मुझे बड़ा आह्लाद हुआ। उनको भी जिसकी खोज में उन्होंने अपना राज-पाट छोड़ा, इन्हीं के वियोग-दुःख में इनके पिता का न जाने क्या हाल हुआ। ईश्वर उन्हें कुशल रखे। जिसने सारे शरीर के आभूषणों को उतार कर शिव की विभूति रमायी; उसके फल-स्वरूप अखिलेश साक्षात् आ कर अपने आप उन्हें मिल गया।"

पुरोहित की समयोचित बातें सब को उपयुक्त जान पड़ीं। संन्यासिनी एवं अरुणिमा का सिर लज्जा के भार से कुछ झुक गया। अखिलेश चिन्ता को और चिन्ता अखिलेश को तथा तरुणिमा संन्यासिनी को और संन्यासिनी अरुणिमा को देखने और उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से निहारने लगे। एक सुखकर वितान बनता दिखाई पड़ा, सब के चेहरे प्रसन्नता से खिल गये।

पुरोहित ने संन्यासिनी का नाम जब कामिनी सुना, तब तो वे बाँसों खुशी के मारे उछल पड़े। कामिनी ने पिछली बातों को एकदम

जो विस्मृत कर दिया था, वही आज उभाड़ खाने लगीं। अरुणिमा को भी जिसका पता पहले ही चल गया था, पुरोहित का वह भी भंडा-फोड़कर सकती थी। अखिलेश के उपेक्षा-भाव का भी कामिनी को पूरा पता था, मगर आज के मंगल-दायक कार्य के अवसर पर उन सब पिछली बातों को प्रकट करना बुद्धिमानी न होगी, गड़े मुर्दे को उखाड़ना ठीक नहीं हुआ करता। यही सब सोच-समझ कर कामिनी और अरुणिमा शान्त हो रहीं। उनका हृदय भावी संसार की रचना की तरफ चला गया। एक नवीन वातावरण का प्रसार होता दिखलाई पड़ा। चिन्ता भी संकोच के मारे दबा जा रहा था। अखिलेश में चिन्ता के सामने निगाह करने की सामर्थ्य न थी, किन्तु अरुणिमा और कामिनी की निस्तब्धता ने इनके चेहरे खिला दिये, सब प्रेम-विभोर से हो गये। रनपुरा की सारी प्रजा के हृदय में आनन्द हिलोर लेने लगा। इस सन्देश का सब ने दिल खोल कर स्वागत किया—"एक नया संसार बसा ले—एक नया संसार..." की ध्वनि से सारा आकाश-मंडल गूँज उठा।

उमानाथ और सेठ बिहारीमल ने भी इस योजना को पसन्द किया। और हर्षित होकर अपनी स्वीकृति देते दिखाई पड़े।

बलजोर ने देश की इन विभूतियों को एकत्र—एक सूत्र—में बँधता देखकर प्रसन्नता प्रकट की।

पुरोहित ने अपने प्रस्तावित विधान का समर्थन होते देखकर प्रसन्न हो सबको धन्यवाद दिया।

सब आनन्द और प्रेम में विभोर हो खुशियाँ मनाने लगे। दिल सब का चाहता था, मगर एक सामाजिक प्राचीन रूढ़ि बीच में खाई का काम करती थी। किसी को इस बात का साहस न होता था कि हम इसमें अगुवा बनें। यही असमंजस इनके दम्पति बनने में बाधक बन रहा था। उन्हें यह पता न था कि प्राचीन समय में स्वयम्बर की प्रथा चलती थी, परन्तु बीच में यह परिवर्त्तन होकर अनिष्टकारी बना।

सुखरानी उठीं। उन्होंने सब से पहले अरुणिमा का हाथ चिन्ता के हाथ में दिया और दोनों से वैवाहिक प्रतिज्ञा दोहरवायी। फिर संन्यासिनी को—नहीं कामिनी को--अखिलेश से मिलाया। पुरोहित ने इस शुभ कार्य को वैदिक रीति के अनुसार पूर्ण किया।

इतने में लोगों ने आँख उठा कर देखा कि एक अधेड़ अवस्था का पुरुष कुछ बड़बड़ाता हुआ उधर चला आ रहा है। उसकी वेश-भूषा देखकर लड़के पीछे से चिल्लाते आ रहे हैं। चिन्ता उठा और लड़कों को अलग किया। उन्हें लाकर अपने पास बैठाया। कुछ देर तक वह आकाश की ओर देखता रहा फिर चारों ओर निगाह दौड़ाकर बैठे हुए लोगों को देखा और कामिनी का हाथ पकड़कर वह रोने लगा। कामिनी का पितृ-प्रेम उमड़ पड़ा। वह भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। सभी अवाक् हो गये। इन दोनों का रोना सुनकर सब का दिल भर आया। अरुणिमा समझा रही थी। आगन्तुक जब रो चुका तो पास ही बैठे बिहारीमल और उमानाथ की ओर तिरस्कार भरी दृष्टि से देखा। फिर लगा कहने—"पता नहीं, संसार में ऐसे 'बाघ' मनुष्य के रूप में भी मौजूद हैं जो दूसरों की बहू-बेटियों को भी हड़प कर जाते हैं।"

पहले तो लोगों की समझ में यह पहेली नहीं आई। कामिनी ने कहा—"पिताजी ! पहले क्षमादान दो, तब फिर जो कुछ कहना हो कहो।" कामिनी को पिता कहते देख फिर स्तब्धता छा गई। वह फिर गरज कर कर बोला—"इस प्रकार की अधार्मिकता किसी प्रकार ग्राह्य नहीं।"

पुरोहित ने आगे बढ़कर आशीर्वाद दिया। उसने पूछा—"कौन ?" पुरोहित ने कहा—"मैं आपका पुरोहित।"

"आजकल के पुरोहित भी धर्म से कितना पीछे चले गए हैं !" उमानाथ ने कहा—"यदि अनजाने कोई गलती हो जावे तो क्या उसमें क्षमा के लिए जगह नहीं रहती ?"

अखिलेश ने उस आदमी का पैर छूकर कहा—"अपना वृत्तान्त बताकर इस क्षुब्ध वायुमंडल को शान्त कीजिए।"

नागरमल (यह उस अधेड़ पुरुष का नाम था) ने कहा—"जिस दिन मैंने सुना कि कामिनी यूनिवर्सिटी छोड़ कर कहीं चली गई। मेरा शरीर आग-बबूला हो गया। साथ ही यह भी सुना—उसका साथी चिन्ता विलायत गया। मैं और जल उठा। उस वक्त यदि मुझे दोनों मिल जाते, तो मैं अवश्य शूट कर देता। अपना मान-सम्मान बचाने के लिए सारा कारोबार बन्द कर दिया। और यही गेरुआ बाना पहिन कर बाहर चल दिया। इसमें मैंने दो बात सोची—कामिनी का पता भी लगाता रहूँगा और ईश्वर-भजन भी होता रहेगा। कोई गाँव कोई नगर बचा नहीं, जहाँ मैं न गया होऊँ। किन्तु सर्वत्र निराशा ही निराशा दिखाई पड़ी।

चिन्ता जब विलायत से लौटा उसकी गति-विधि भी देखता रहा। कामिनी के जेल जाने पर कुछ पता लगा; किन्तु फिर भी कुछ न जान पाया। जेल से छूट कर यह न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान हो गई। आज मुझे सारी परिस्थितियाँ सामने नाचती दिखाई पड़ रही हैं। मैं सनातन की बातों का समर्थक हूँ। यह आप लोगों का कृत्य मुझे नहीं सुहाता है। मगर क्या करूँ फिर उसी पद्धति के अनुसार विवश हो जाना पड़ता है। कामिनी का चरित्र और उसकी देश-सेवा और चिन्ता तथा अखिलेश एवं बेटी अरुणिमा का परस्पर का व्यवहार देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। और मैंने चिन्ता को भी क्षमा किया और कामिनी को भी। लेकिन हाँ, एक बात और, आप लोगों ने जो सार्वजनिक कार्य किए हैं उन्हें एक नाम दे देना आवश्यक जान पड़ता है।" लोगों ने उत्सुकता के साथ पूछा। नागरमल ने कहा—"जीवन-सुधार-सभा' ही इसका नाम उपयुक्त जान पड़ता है। इस संस्था का कार्य चलाने के लिए मैं अपनी सारी अर्जित सम्पत्ति दान में देता हूँ।"

यह सुनकर सारा विक्षुब्ध उपस्थित जन-समाज उफान लेने वाले दूध में ठंडा जल पड़ने के कारण शान्त हो गया। बिहारीमल उठे और अपना पूर्व परिचय बिना बताए ही गले मिले। नागरमल ने ध्यान-पूर्वक उनका चेहरा देखा, फिर उनके पैरों पर गिर पड़े। नव-दम्पतियो को इन्होंने आशीर्वाद दिया। नव-दम्पतियों में से हर एक ने बड़े-बूढ़ों का पैर छूआ।

नागरमल ने कहा—"आज मेरा सारा क्रोध और क्षोभ जाता रहा। दुनिया भी विचित्र खिलवाड़ की जगह है। बिना असली बात का पता लगे ही किसी के चरित्र पर उँगली उठाना सर्वथा सिद्धान्त की हत्या करना है।

अपनी सन्तान को चरित्र-भ्रष्ट होते देख कौन वज्र-हृदय व्यक्ति होगा जो खड़ा-खड़ा देखता रहे। समाज का दोषारोपण कभी भी बरदास्त नहीं किया जा सकता। भगवान न करे कि सन्तान का दोष सुनने के लिए माता-पिता जीवित रहें; किन्तु नहीं, आज समाज के बीच हमारा मुख उज्वल है; देश और जाति के बीच भी इसने हमारा सिर ऊँचा किया है। चिन्ता तो सच-मुच चिन्तामणि है। इसका त्याग देश के लिए अनुकरणीय है। वास्तव में राष्ट्र के लिए यह गौरव की बात है। अखिलेश की दिव्य मूर्ति का दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। ऐसा योग्य व्यक्ति सुखरानी की कोख से ही उत्पन्न होने योग्य था। कामिनी संन्यासिनी बनी इसलिए अब मैं इसे संन्यासिनी ही कह कर पुकारूँगा। इसने अपना जन्म अखिलेश को पाकर सार्थक बनाया। अरुणिमा और चिन्ता की युगल जोड़ी हमारे दुखी हृदय को शान्ति दे रही, जिस अंधकार में मैं टोहा लगाता था, वही प्रकाश में परिवर्तित होकर भूत को अच्छे वर्त्तमान और भविष्य में बदलने वाला हो गया। ईश्वर करे ऐसी सन्तानें भारत वसुन्धरा में उत्पन्न हों, तभी इसका उत्पीड़न कम हो सकेगा। देश और राष्ट्र की गोहार पर हमारी योग्य सन्तानें रण-प्रांगण में हों, यही सदिच्छा और ईश्वर से प्रार्थना है।" इतना कहकर नागरमल चुप हो रहे।

दोनों नव-दम्पति लज्जा से दबे जा रहे थे। इस अन्तर्जातीय वैवाहिक प्रथा ने गाँव की और सभी सुविधाओं में नवीन स्फूर्ति पैदा कर दी। अरु-णिमा के लिए छावनी अरुणिमा-निवास बनी और कामिनी के लिए उमानाथ की चौपाल अखिलेश-मन्दिर बनी।

गाँव वालों ने नव-दम्पतियों को अपने हाथ से बनाये बहुत से उपहार

दिये। घर-घर में खुशी मनाई जाने लगी। एक प्रीति-भोज का आयोजन किया गया, जिसमें सभी ने सहभोज किया।

उमानाथ की कामना पूर्ण हुई। सुखरानी का जी यही कहता कि संसार में हमारी सन्तानें अमर होकर देश की सेवा में बराबर संलग्न रहें। उनकी कीर्ति विमल चन्द्रिका की तरह छिटके, यश चारु चन्दन होकर महके। ईश्वर इन्हें चिरायु करे। हमारी कोख सफल हुई। भगवान ने कामना पूर्ण की। यदि मनुष्य अपना सत्-सुकृत न छोड़े, विपत्तियों के आने पर धीरज न छोड़े, तो परमात्मा बेड़ा पार कर देता है। देश और जाति की सेवा इनका प्रधान कार्य-क्षेत्र बने, जिससे गरीब और निर्धन समाज सुखी होकर ईश्वर के भजन में निरंतर निमग्न रहे।

उमानाथ के दिल में बड़ा भारी उछाह हुआ। सेठ बिहारीमल फूले न समाते थे। बलजोर का जोर अब और अधिक हो गया। रनपुरा गाँव अखिलेश की आराधना से, चिन्ता की प्रेरणा से, अरुणिमा की अरुण आभा से और कामिनी की क्रान्ति से दिन-दूना और रात-चौगुना उन्नति करने लगा।

अखिलेश यही कहता—"चिन्ता द्वारा मुक्त-बन्दी का यह प्रेमोपहार पुरोहित द्वारा प्रस्तावित, सदैव देश की हित-कामना में सहायक होता रहे। यही हमें एक दिन स्वतंत्र भारत का दर्शन करावे और जिससे हमारी दुनिया भी दूसरी दुनिया की होड़ में चले।"

चिन्ता ने धीरे से कहा—"अरुणिमा का मन-चाहा हुआ। और कामिनी का भी।" अखिलेश समीप ही बैठा था, सुन कर हँस पड़ा। इस विनोद की हँसी में सारे वातावरण को मुखरित कर दिया।